ICN: H-192/2022

प्रमुख फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग: पहचान एवं नियंत्रण

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली - 110 012

ICN: H-192/2022

प्रमुख फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग: पहचान एवं नियंत्रण

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110012

जनवरी 2022 में प्रकाशित

निदेशक
अशोक कुमार सिंह

संकल्पना
हिन्दी प्रकाशन समिति

लेखक एवं संपादक
जी.पी. राव

सहयोग
बी.एस. रावत

उद्धरणः प्रमुख फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोगः पहचान एवं नियंत्रण, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

मुद्रित प्रतियां : 500

मूल्यः 100/–रु.
ICN: ICN: H-192/2021

© 2022, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, सर्वाधिकार सुरक्षित

वेबसाइट : www.iari.res.in

प्रकाशकः निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली की ओर से प्रकाशन यूनिट द्वारा प्रकाशित, मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी–108/1 बैक साइड, नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस–1, नई दिल्ली–110028, दूरभाषः– 011–45404606, E-mail: msprinter1991@gmail.com द्वारा मुद्रित

विषय-सूची

	आमुख	v
	प्रस्तावना	vii
1.	**फाइटोप्लाज्माः एक संक्षिप्त परिचय**	1
2.	**धान्य फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग**	7
	(i) गेहूं की पत्ती का पीली धारी और बौनापन रोग	7
	(ii) धान का पीली पत्ती व बौनापन रोग	8
	(iii) मक्के का पत्ती लालिमा रोग	9
3.	**फलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग**	11
	(i) पपीते का फिलोडी रोग	11
	(ii आम वृक्ष में मालफारमेशन (गुम्मा) रोग	12
	(iii) अनार का पीली पत्ती व ह्रासमान रोग	13
	(iv) अंगूर की पत्तियों का पीला एवं लालिमा रोग	14
	(v) आड़ू का छोटी पत्ती एवं ह्रासमान रोग	15
	(vi) नींबू वर्गीय पौधे में फाइटोप्लाज्मा जनित रोग	17
	(vii) अनन्नास का विचेज ब्रूम रोग	18
	(viii) चीकू (सपोटा) का फिलोडी एवं समतल तना रोग	19
4.	**फूलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग**	21
	(i) गेंदा के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग	22
	(ii) डेजर्ट गुलाब	22
	(iii) गुलाब के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग	23
	(iv) गुलदाउदी का फिलोडी रोग	23
	(v) ग्लेडियोलस	25
	(vi) चमेली का छोटी पत्ती व बौनापन रोग	25
	(vii) सदाबहार पौधे का छोटी पत्ती व कवक कुर्चिका रोग	26
	(viii) गुड़हल	26
	(ix) चाइना एस्टर	27
	(x) ब्रेचाइकोम	27
	(xi) पिटूनिया के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग	28
	(xii) फ्लॉक्स	29
	(xiii) गुलमेंहदी (गार्डन बालसम) का समतल तना व छोटी पत्ती रोग	29
	(xiv) क्राउन डेजी का बौनापन रोग	29

5.	**सब्जियों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग**		31
	(i)	बैंगन का छोटी पत्ती रोग	31
	(ii)	टमाटर का दीर्घ कलिका रोग	33
	(iii)	आलू के द्वितियक तनों एवं जड़ों का प्रचुरोद्भवन	34
	(iv)	गोभी का फ्लोरल मालफारेशन व समतल तना रोग	34
	(v)	लौकी का विचेज ब्रूम रोग	35
	(vi)	कद्दू का बौनापन एवं फिलोडी रोग	35
	(vii)	लोबिया का फिलोडी एवं विचेज ब्रूम रोग	36
	(viii)	मिर्च का छोटी पत्ती व विचेज ब्रूम रोग	36
	(ix)	भिण्डी का छोटी पत्ती एवं कवक कुर्चिका रोग	37
	(x)	गाजर का फिलोडी रोग	38
	(xi)	सलाद एवं साग–सब्जी फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग	38
6.	**दलहनी फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग**		40
	(i)	चने का बौनापन एवं फिलोडी रोग	40
	(ii)	अरहर का विचेज ब्रूम एवं फिलोडी रोग	41
	(iii)	बाकला का कली प्रचुरोद्भवन व छोटी पत्ती रोग	42
	(iv)	मसूर का विचेज ब्रूम रोग	43
7.	**तिलहनी फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग**		44
	(i)	सरसों का पर्णभित्ती (फिलोडी) एवं तना विकृति रोग	44
	(ii)	तिल का फिलोडी रोग	45
	(iii)	मूंगफली का छोटी पत्ती एवं तने का प्रचुरोद्भवन	47
	(iv)	सोयाबीन का पीली पत्ती एवं विचेज ब्रूम रोग	48
	(v)	अलसी का फिलोडी समतल तना रोग	49
8.	**नकदी/व्यावसायिक फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग**		51
	(i)	गन्ने का सफेद पत्ती व घासीय प्ररोह रोग	51
	(ii)	चंदन वृक्ष का स्पाइक रोग	53
	(iii)	बांस प्रजातियों का विचेज ब्रूम एवं ह्रासमान रोग	54
9.	**ताड़ वृक्षों से संबंधित फाइटोप्लाज्मा जनित रोग**		56
	(i)	नारियल का जड़ मुर्झान रोग	56
	(ii)	सुपारी का पीली पत्ती रोग	57
	(iii)	ताड़–तेल का अंकुर विगलन (स्पियर रॉट) रोग	58
10.	**फाइटोप्लाज्मा रोगों का समेकित प्रबंधन**		60

आमुख

भारत एक कृषि प्रधान देश है और भारतीय अर्थव्यवस्था बहुत हद तक कृषि और उसके सबंधित क्षेत्रों पर निर्भर करती है। कृषि उत्पादन में आशातीत प्रगति व वृद्धि, नवीन तकनीकों एवं अधिक पैदावार वाली रोग–रोधी किस्मों के कारण ही संभव हुई है। कृषि क्षेत्र में लगातार होती कमी एवं बढ़ती जनसंख्या के संदर्भ में भारत में फसलों की उत्पादकता बढ़ाना ही सबसे बड़ा लक्ष्य होगा, जिससे कृषि जन–सामान्य के लिए लाभकारी बन सके, परन्तु कृषि उत्पादन बढ़ाने में खरपतवार, कीट, बीमारियां, सूत्रकृमि इत्यादि अनेक बाधाएं हैं। फसलों को प्रभावित करने वाली प्रमुख बीमारियों में फाइटोप्लाज्मा जनित बीमारियां भी विगत वर्षो में लगातार फसलों की उत्पादकता को प्रभावित कर रही हैं, जिनके बारे में कृषकों को पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है।

फाइटोप्लाज्मा एक बहुरुपी या तंतुनुमा आकार (200–800 नैनोमीटर) के कोशिकाभित्ति रहित सूक्ष्म शाकाणु होते हैं, जो संक्रमित पौधों के पोषवाहक (फ्लोएम) ऊतकों के चालनी कोशिका तत्वों में पाये जाते हैं। भारत में विगत दो दशकों में फसलों पर फाइटोप्लाज्मा द्वारा होने वाले महत्वपूर्ण विभिन्न रोगों की पहचान की गई है, जिनसे उत्पादन अत्यधिक प्रभावित होता है। भारत में फाइटोप्लाज्मा से जुड़ी बीमारियों का इतिहास 125 वर्षो से भी अधिक पुराना है। भारत में फाइटोप्लाज्मा के कारण होने वाले रोगों की सूची लगातार बढ़ती जा रही है। विविध भौगोलिक क्षेत्रों में फाइटोप्लाज्मा द्वारा जनित नई बीमारियों को हाल के वर्षो में धान्य, तिलहन, ताड़ फसलों, दलहन, सब्जी, फल, फूल, नकदी फसलों और फलदायी वृक्षों की प्रजातियों सहित लगभग 200 पौधों में पहचान की जा चुकी है। भारत में तिल की पर्णभत्ता, बैंगन के लघु पर्ण, गन्ने का घासीय प्ररोह, चन्दन का स्पाइक रोग, नारियल का घातक पीतिमा एवं जड़ सूखा रोग, सुपारी का पीली पत्ती रोग और सजावटी पौधों की फाइटोप्लाज्मा जन्य बीमारियां प्रमुख हैं, जिनसे प्रतिवर्ष फसलों को अत्यधिक नुकसान पहुंच रहा है। हांलाकि विगत 25 वर्षों से डीएनए आधारित तकनीक का अनुप्रयोग कर आण्विक (पीसीआर) विधियों द्वारा इन प्रोकैरयॉट्स की सुस्पष्ट पहचान संभव हो सकी है।

संस्थान में विगत दशक में फाइटोप्लाज्मा द्वारा होने वाली बीमारियों की कई महत्वपूर्ण फसलों पर पहचान की गई और वातावरण में बीमारी फैलाने वाले कारकों एवं प्रबंधन हेतु डॉ. जी.पी. राव द्वारा सराहनीय शोध कार्य किया गया। मुझे विश्वास है कि संस्थान द्वारा प्रकाशित की जा रही हिन्दी पुस्तिका **प्रमुख फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोगः पहचान व नियंत्रण** हमारे छात्रों, वैज्ञानिकों एवं कृषकों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। इस प्रसार पुस्तिका में विभिन्न फसलों पर वर्णित फाइटोप्लाज्मा जनित रोग–लक्षण, उनके रोगजनक, प्रसार व प्रबंधन की जानकारी किसानों की आय बढ़ाने में निश्चित ही सार्थक सिद्ध होगी।

मैं इस पुस्तिका के प्रकाशन के लिए डॉ. जी. पी. राव तथा प्रकाशन यूनिट के प्रयासों की सराहना करना चाहता हूँ जिनके परिश्रम से यह प्रकाशन किसानों के सुनहरे भविष्य व बेहतर फसल उत्पादन के लिए उपलब्ध कराया जा रहा है।

दिनांकः 20 जनवरी 2022
नई दिल्ली

(अशोक कुमार सिंह)
निदेशक

प्रस्तावना

फाइटोप्लाज्मा एक बहुरुपी या तंतुनुमा आकार के कोशिकाभित्ति रहित सूक्ष्म शाकाणु होते है, जो संक्रमित पौधों एवं कीटों में अपना जीवन चक्र अपनाते हैं। फाइटोप्लाज्मा से संक्रमित पौधे विभिन्न प्रकार के लक्षण प्रदर्शित करते हैं, जिनमें पर्णाभता (फिलोडी), कवककूर्चिका (विचेज ब्रूम), चपटा तना, लघुपत्र (लिटल लीफ), पर्ण पीतीमा (लीफ येलो) आदि मुख्य है। फाइटोप्लाज्मा रोग, पौधों के विकास व उनकी गुणवता को बहुत ज्यादा प्रभावित करते हैं। भारत में फसलों के रोगों में फाइटोप्लाज्मा जनित रोग महत्वपूर्ण रोगों की श्रेणी में उभर रहे हैं। पूरे विश्व में लगभग 800 पौधों में फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों की पहचान की गई है जो मुख्यतः फल, फूल, दलहन, तिलहन, गेहूँ, धान, मक्का, गन्ना, सब्जियों, मसालों आदि फसलों को प्रभावित कर अत्यधिक नुकसान पहुँचा रहे हैं। फाइटोप्लाज्मा से जुड़ी बीमारियों का इतिहास भारतवर्ष में 125 वर्षो से अधिक पुराना रहा है, परन्तु 1994 के अंत में आण्विक विधियों के आधार पर फाइटोप्लाज्मा की विश्वसनीय पहचान भारत में संभव हो सकी, जिससे विभिन्न पौधों में फाइटोप्लाज्मा से जुड़े रोगों के प्रामाणिक वर्गीकरण में मदद मिली। भारत में फाइटोप्लाज्मा के कारण होने वाले रोगों की सूची दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। विविध भौगोलिक वितरण के कारण कई नई उभरती बीमारियों को हाल ही के वर्षो में धान्य, दलहनों, ताड़ फसलों, तिलहनों, सब्जियों, मसालों, औषधीय, फूलों, नकदी फसलों और फलदायी वृक्षों की प्रजातियों सहित भारत में लगभग 200 से अधिक पौधों के फाइटोप्लाज्मा द्वारा रोगी होने के रुप में पहचान की जा चुकी है। भारत में पिछले दशक के दौरान आर्थिक रुप से मुख्य कृषि फसलों पर नए फाइटोप्लाज्मा रोग की पहचान के बढ़ते रुझान, देश मे मॉलीक्यूट्स के उभरते समूहों के महत्व को इंगित करते हैं। तिल की पर्णभता, बैंगन का लघु पर्ण, गन्ने का घासीय प्ररोह, चन्दन स्पाइक रोग, नारियल का घातक पीतिमा एवं जड़ का सूखा रोग, सुपारी के पीले पत्ते और सजावटी पौधों की फाइटोप्लाज्मा जन्य बीमारियां भारतवर्ष में फाइटोप्लाज्मा द्वारा होने वाली प्रमुख बीमारियां हैं, जो प्रतिवर्ष इन फसलों को अत्यधिक नुकसान पहुंचाती हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण फाइटोप्लाज्मा को प्रसारित करने वाले पर्णफुदक प्रजातियों की संख्या लगातार बढ़ने से फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों का प्रसार व आपतन फसलों में अधिक देखा जा रहा है, जिससे विभिन्न फसलों के उत्पादन में कमी आई है। चूंकि अभी तक फाइटोप्लाज्मा रोग के प्रति रोगरोधी प्रजातियों का विकास संभव नहीं हो सका है। ऐसे समय में रोग के लक्षण को फसल के प्रांरभिक अवस्था में पहचान कर एवं फाइटोप्लाज्मा फैलाने वाले कीट का नियंत्रण कर रोग के आपतन व उसके द्वारा होने वाले नुकसान को काफी कम किया जा सकता है।

इस पुस्तिका मे भारतवर्ष में पाए जाने वाले मुख्य फाइटोप्लाज्मा जन्य रोगों का वर्णन किया गया है। भारत में लगभग 200 पौधों में फाइटोप्लाज्मा के दस विभिन्न फाइटोप्लाज्मा ग्रुप की पहचान की गई है। भारत के कृषकों में इन रोगों के बारे में जानकारी सीमित है। इस पुस्तिका में वर्णित जानकारी से हमारे कृषक बन्धु महत्वपूर्ण फसलों के फाइटोप्लाज्मा रोगों के लक्षण को समय से पहचान कर उनकी रोकथाम हेतु उचित प्रबन्धन की प्रक्रिया अपना सकते है एवं अपनी फसलों को इस रोग से बचाकर अच्छा लाभ कमा सकते हैं। मुझे पूरा विश्वास है, फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों की जानकारी कृषक बन्धुओं को अपनी आय दुगुनी करने के प्रयास में निश्चित ही लाभदायी एवं मददगार साबित होगी।

मैं संस्थान के निदेशक डॉ. अशोक कुमार सिंह का भी आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने इस बुलेटिन को तैयार करने के लिए मुझे प्रोत्साहित किया। मैं फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग के अध्यक्ष डॉ. एस.के. सिंह, बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संभाग के प्रधान वैज्ञानिक डॉ. अतुल कुमार, पादप रोगविज्ञान संभाग के प्रधान वैज्ञानिक डॉ. राजेन्द्र पंत, डॉ. एम. एस. सहारन तथा कुमारी पूजा एवं पूर्व संपादक श्री अनिल कुमार दुबे जी को भी साधुवाद देना चाहूंगा जिन्होंने इस पुस्तक के विभिन्न विषय–वस्तु संबंधी भाषा ठीक करने में सहायता प्रदान की है। साथ ही मैं पुनरीक्षण एवं भाषायी संपादन में सहयोग करने के लिए प्रकाशन यूनिट के निजी सचिव श्री बी.एस. रावत को हार्दिक धन्यवाद देता हूं जिनके सहयोग से यह प्रकाशन सफलतापूर्वक प्रकाशित हो सका है।

दिनांक 18 जनवरी, 2022
नई दिल्ली

(जी.पी. राव)
प्रधान वैज्ञानिक (पादप रोग)
पादप रोगविज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012
ई–मेलः gprao_gor@rediffmail.com
सम्पर्कः 9711763384

1. फायटोप्लाज्मा: एक संक्षिप्त परिचय

फायटोप्लाज्मा, तंतुनुमा अथवा बहुरूपी आकार के, एक माइक्रोमीटर से छोटे (200–800 नैनोमीटर) परिमाण के, कोशिकाभित्ती रहित सूक्ष्म जीवाणु होते हैं, जो संक्रमित पौधों के फ्लोएम ऊतकों की चालनी कोशिका–तत्वों में पाए जाते हैं (चित्र 1.1)। इनके जीनोम का परिमाण 530 केबी से 1350 केबी तक पाया गया है। फाइटोप्लाज्मा पौधों में कई प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं, जिनमें शाकीय, काष्ठीय, वन्य एवं कृषि प्रकार के सभी पौधे सम्मिलित हैं। ये फसलों को अत्यधिक आर्थिक हानि पहुंचाते हैं। इन सूक्ष्मजीवों के विषय में बहुत अधिक जानकारी अभी उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि इन्हें सजीव कोशिकाओं के बाहर प्रयोगशाला में संवर्धित किया जाना संभव नहीं हो सका है। ये संक्रमित पौधे के फ्लोएम ऊतकों एवं कीटों की लार–ग्रंथियों में विद्यमान होते हैं। सूक्ष्म आकार एवं जीनोम परिमाण कम होने के कारण जातिवृत्त के आधार पर इन्हें मॉलीक्यूट्स कक्षा के अंतर्गत रखा गया है। इन रोगजनकों को पहले माइकोप्लाज्मा लाइक आर्गेनिज़्म (एमएलओ) के नाम से जाना जाता था और सन् 1994 में इन रोगजनकों का नाम एमएलओ से बदलकर फाइटोप्लाज्मा रखा गया, तथा 16S राइबोसोमल डीएनए संबंधी अनुक्रम के आधार पर इन्हें 34 जातिवृत्तीय समूहों में वर्गीकृत किया गया, जिनमें 16Sr I, 16Sr II, 16Sr V, 16Sr VI, 16Sr VIII, 16Sr IX, 16Sr XI, 16Sr XII एवं 16Sr XIV प्राकृतिक रूप से भारत में विस्तृत रूप में विद्यमान हैं। इनका पारेषण फ्लोएम से पादप रस चूसने वाले पर्णफुदकों (लीफ हॉपर) द्वारा होता है। मुख्य रूप से साइकेडेलीडी कुल के अंतर्गत आने वाले हेमोप्टेरन रोगवाहक कीटों के माध्यम से ये सीधे पौधे की चालनी ट्यूब कोशिकाओं से पादप रस चूसते हैं। पहले इनकी पहचान पारेषण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिता (टीईएम), प्रकाश सूक्ष्मदर्शिता, 4'–6–डाइएमिडिनो–2–फिनाइल इन्डोल (डीएपीआई) एवं प्रतिदाप्ति सूक्ष्मदर्शिता तकनीक द्वारा की जाती रही है। हालांकि विगत 20 वर्षों से, डीएनए–आधारित तकनीक का अनुप्रयोग कर, आण्विक विधियों द्वारा इन प्रोकैरयॉट्स की सुस्पष्ट पहचान की जाने लगी है, जिनमें पीसीआर एवं एलायजा आधारित विधियां सम्मिलित हैं। फाइटोप्लाज्मा की पहचान हेतु 1990 के दशक के आरंभ में पीसीआर आधारित विधियों का विकास हुआ जो एलायजा की तुलना में अधिक संवेदनशील थीं तथा आरएफएलपी विश्लेषण द्वारा फाइटोप्लाज्मा के विभिन्न विभेदों एवं प्रजातियों की अधिक सटीक रूप से पहचान संभव हो सकी। फायटोप्लाज्मा, अपना जीवन–चक्र स्वतंत्र रूप से, पौधों एवं कीटों में पूरा करने में सक्षम हैं। प्राकृतिक रूप से इन रोगजनकों का पारेषण मुख्यतया पर्णफुदकों, पादपफुदकों, जैसिड कीटों तथा अमरबेल के द्वारा होता है।

फाइटोप्लाज्मा जन्य रोगों के प्रबंधनार्थ, मुख्य रूप से रोगवाहक कीट का नियंत्रण करना, समय से लक्षण की पहचान एवं रोगी पौधों को नष्ट करना अत्यावश्यक है। फाइटोप्लाज्मा के प्रसार को रोकने हेतु संगरोध उपायों का पालन करना चाहिए और इसके लिए इन रोगजनकों की समुचित पहचान के लिए आण्विक निदानसूचक विधियों की सुविधा का होना आवश्यक है।

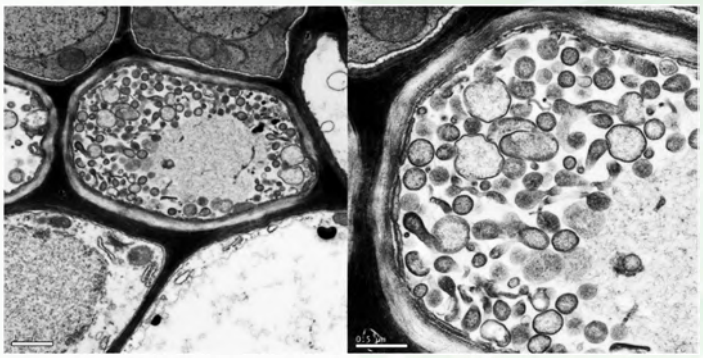

चित्र 1.1: इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में संक्रमित पौधे के पोषवाहक ऊतकों के चालनी कोशिकाओं में फाइटोप्लाज्मा की संरचना

रोग–लक्षण

फाइटोप्लाज्मा से संक्रमित पौधे, विविध प्रकार के लक्षण दर्शाते हैं जो पोषी पौधे के उपापचयन (मेटाबोलिज्म) में इनके कारण होने वाले दुष्प्रभावों को दर्शाते हैं। इन लक्षणों में पत्तियों की हरिमाहीनता (क्लोरोसिस), पीतिमा अथवा कॉस्यन (ब्रोजिंग), पौधों में वामनन (अंतरगांठों एवं पत्तियों का छोटा रह जाना), वीरेसेंस (पुष्पों का हरे रंग का होना एवं सामान्य वर्णकों का क्षय होना), पर्णाभता (पुष्पांगों की संरचना पत्तियों जैसी होना), पुष्पों में बंध्यता, द्वितीयक सहायक कलिकाओं का प्रचुरोद्भवन

चित्र 1.2 : फाइटोप्लाज्मा द्वारा उत्पन्न विभिन्न प्रकार के रोग लक्षणः (क) गुलाब का वीरेसेंस, (ख) बैंगन का छोटी पत्ती रोग, (ग) गन्ने का सफेद पत्ती रोग, (घ) तिल का पर्णाभत्ता रोग, (च) टमाटर का बिग बड रोग, (छ) चीकू का समतल तना रोग, (ज) चाइना एस्टर का फिलोडी रोग, (झ) चाइना एस्टर का स्वस्थ फूल, (ट) नींबू का पीली पत्ती रोग

(प्रोलीफरेशन) जिसके कारण प्रायः कवक कुर्चिका प्रभाव उत्पन्न हो जाता है, द्वितीयक जड़ों का प्रचुरोद्भवन, असामान्य फल–फूल एवं बीज बनना तथा पर्वों का असामान्य रूप से दीर्घीकरण (जिससे पतले–पतले प्ररोह बनते हैं) सम्मिलित हैं (चित्र 1.2)। रोगी पौधों में उत्पन्न लक्षण, फाइटोप्लाज्मा एवं पोषी पौधे की प्रजाति तथा संक्रमण की अवस्था पर निर्भर करते हैं। उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त, फायटोप्लाज्मा–संक्रमण से पौधे के फ्लोएम ऊतकों में शिराएं काफी अधिक फूल जाती हैं और इन सभी लक्षणों का पौधे पर निर्णायक प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पहचान एवं निदान

आण्विक तकनीकों की खोज से पहले फाइटोप्लाज्मा रोगों का निदान कठिन था क्योंकि इनका प्रयोगशाला में संवर्धन करना संभव नहीं है। इसलिए पारम्परिक निदानसूचक विधियों जैसे कि रोगलक्षणों को देखकर पहचान करना अथवा संक्रमित पौधों के फ्लोएम ऊतकों के परामहीन काट (अल्ट्राथिन सेक्शन) को इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखकर इन रोगजनकों की उपस्थिति ज्ञात करना एवं रोगी दिखने वाले पौधों को टैट्रासायक्लिन जैसे एंटीबायोटिक्स से उपचारित करके यह देखा जाता था कि वे पुनः स्वस्थ हो पाए हैं या नहीं।

फाइटोप्लाज्मा की पहचान हेतु 1990 के पलने में निदानसूचक सीरोलजिकल विधियां विकसित हुईं जिनमें एलायजा आधारित विधियों का समावेश था। सन 1990 के दशक के आरंभ में, पीसीआर आधारित विधियों का विकास हुआ जो एलायजा की तुलना में अधिक संवेदनशील थीं और आरएफएलपी विश्लेषण द्वारा फाइटोप्लाज्मा के विभिन्न विभेदों एवं प्रजातियों की यथार्थ पहचान करने में सक्षम थी। पौधों एवं कीट आतिथेयों, दोनों के लिए निदानसूचक विधियों में जीवविज्ञान, ऊतक विज्ञान, प्रतिरक्षा विज्ञान एवं आण्विक विज्ञान संबंधी विधियां सम्मिलित हैं। जीवविज्ञान संबंधी परीक्षणों में समय अधिक लगता है और उनके परिणामों की सुस्पष्ट व्याख्या भी कठिन है। ऊतकविज्ञान के माध्यम से फाइटोप्लाज्मा – डीएनए को प्रतिदीप्तिशील वर्ण, डीपीएआई के साथ अभिरंजित कर फ्लोएम ऊतकों को प्रतिदीप्ति सूक्ष्मदर्शी अथवा इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखकर फाइटोप्लाज्मा की उपस्थिति एवं पहचान संभव है। डीएपीआई (4'6 डाइअमीनो–2–फीलइनडोल) एक प्रतिदीप्तिशील रंग है जो फाइटोप्लाज्मा कोशिकाओं में विद्यमान AT-rich ds DNA के साथ बाइंड हो जाता है।

आण्विक तकनीकों की खोज से पहले फाइटोप्लाज्मा रोगों का निदान कठिन था क्योंकि इनका प्रयोगशाला में संवर्धन करना संभव नहीं है। विगत 25 वर्षो से, डी.एन.ए. आधारित तकनीक का अनुप्रयोग कर आणविक (पीसीआर) एवं सीरालोजिक विधियों (एलायजा), द्वारा इन प्रोकैरयॉट्स की सुस्पष्ट पहचान संभव हो सकी है। फाइटोप्लाज्मा रोगों की प्राथमिक पहचान करने में, यूनीवर्सल प्राइमर्स का उपयोग करने वाली पीसीआर–आमापन विधि सर्वोत्तम है। फाइटोप्लाज्मा की पहचान हेतु कई सार्वभौमिक एवं अनेक फाइटोप्लाज्मा समूह–विशिष्ट प्राइमर्स भारत व विश्व में डिजाइन किए जा चुके हैं।

समूह विशिष्ट प्राइमर्स का उपयोग कर, संवेदनशीलता एवं विशिष्टता में बढ़ोतरी के लिए नेस्टेड पीसीआर आमापन को डिजाइन किया गया है। मिश्रित संक्रमण की अवस्था में संक्रमित ऊतकों में उपस्थित दो या उससे अधिक फाइटोप्लाज्मा समूहों की पहचान करने में भी नेस्टेड पीसीआर आमापन विधि सक्षम हैं। पीसीआर विधि में प्रयुक्त अधिकांश प्राइमर्स राइबोसोमल जीन अनुक्रमों से उत्पन्न होते हैं और उनका उपयोग फाइटोप्लाज्मा की पहचान हेतु यूनीवर्सल एवं रोगजनक विशिष्ट पीसीआर प्राइमर्स को विकसित करने में किया जाता है। सभी प्रोकैरयॉट्स में 16Sr DNA की उपस्थिति होने तथा इसके संरक्षित एवं विविधतापूर्ण क्षेत्रों के कारण, जातिवृत्तीय वर्गीकरण हेतु यह एक आदर्श जीन है। अज्ञात पहचान वाले फाइटोप्लाज्मा की पहचान करने एवं उनके अभिलक्षणन में, पीसीआर प्रवर्धन, रेस्ट्रिक्शन फ्रैगमेंट लेंथ बहुरूपता (आरएफएलपी) एवं फाइटोप्लाज्मा के 16Sr DNA के अनुक्रम विश्लेषण का महत्वपूर्ण योगदान है। इसे सूक्ष्मदर्शी अथवा सीरम विज्ञान संबंधी विधियों पर आधारित पहचान की तुलना में अधिक संवेदनशील पाया गया है।

प्राकृतिक प्रसार

साइकेडेलाइडिया कुल (पर्णफुदक) के अंतर्गत आने वाले एवं पादप रस चूसने वाले रोगवाहक कीटों के माध्यम से ही प्रमुखतया फाइटोप्लाज्मा का पारेषण होता है। इसके अतिरिक्त फाइटोप्लाज्मा का प्रसार, कायिक प्रगुणन द्वारा भी होता है जैसे कि फूलों एवं फलों की कलम लगाना या स्वस्थ पौधे पर संक्रमित पौधे के किसी भाग की ग्राफ्टिंग विधियां आदि सम्मिलित हैं।

पादप रस चूसने वाले रोगवाहक कीटों में, साइकेडेलाइडिया के अतिरिक्त फल्गोराइडिया (पादप फुदक) एवं सिलिड्स भी फाइटोप्लाज्मा का स्थायी रूप से पारेषण करते हैं। वे संक्रमित फ्लोएम ऊतकों के रसों को चूस कर फाइटोप्लाज्मा का अधिग्रहण करते हैं और उनका दूसरे पौधों तक प्रसार करते हैं।

फाइटोप्लाज्मा का पारेषण, अमरबेल के माध्यम से भी होता है। हाल ही में, टमाटर, तोरिया, मक्का, आदि फसलों में फाइटोप्लाज्मा का बीज के माध्यम से पारेषण होने की पुष्टि की गई है, परन्तु इनका पारेषण प्रतिशत बहुत ही कम है।

जीवन चक्र

फाइटोप्लाज्मा अपना जीवन चक्र स्वंतत्र रुप से, पौधों एवं कीटों में पूरा करने में सक्षम है। विस्तृत सीमा में पादप प्रजातियों के रोगों के साथ फाइटोप्लाज्मा का साहचर्य पाया गया है। इनमें फल, सब्जी, मसाले, चारा एवं दाल फसलें सम्मिलित हैं। फाइटोप्लाज्मा के जीवन–चक्र में, रोगवाहक कीट एवं पोषी पौधे के फ्लोएम ऊतक के भीतर एक अंतःकोशिकीय अवस्था का समावेश होता है। एक फाइटोप्लाज्मा का संभावित जीवन चक्र चित्र 1.3 में दर्शाया गया है। इस जीवन चक्र में, एक स्वस्थ पर्णफुदका, फाइटोप्लाज्मा से संक्रमित पौधों पर भोजन करता है (उपार्जन–भोजन)। तत्पश्चात्, गुप्त अवधि के दौरान कीट के भीतर फाइटोप्लाज्मा प्रगुणित होकर (निवेशन–भोजन) अपनी संख्या को इतना बढ़ा लेते हैं कि वे अन्य स्वस्थ पौधों तक फाइटोप्लाज्मा का प्रसार करने में सक्षम हो सकें।

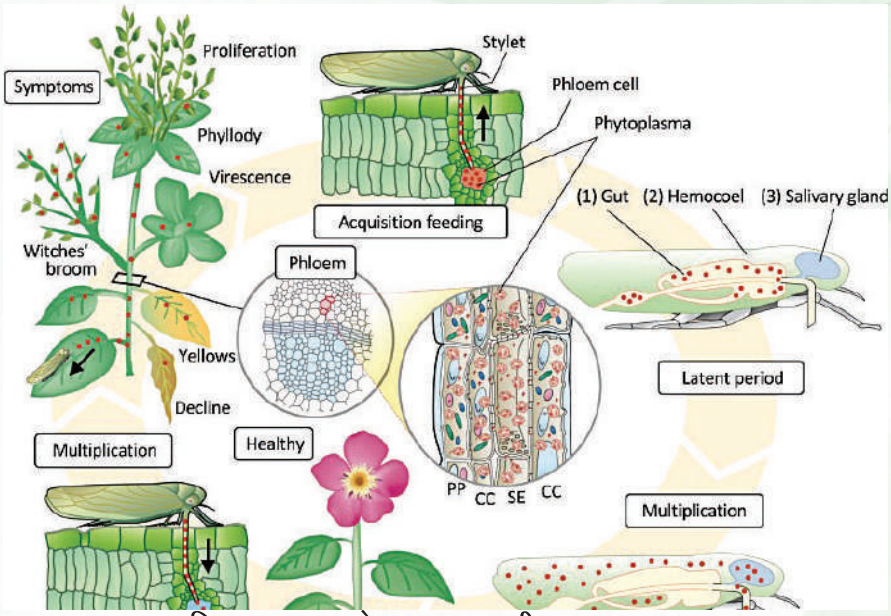

चित्र 1.3: फाइटोप्लाज्मा का जीवन–चक्र

वर्गीकरण विज्ञान

फाइटोप्लाज्मा मॉलीक्यूट् समूह के सदस्य हैं और इस समूह के भीतर ये एकमात्र गण एक्लियोप्लाज्मटेल्स के अंतर्गत आते हैं। सन् 1992 में, मॉलीक्यूट्स के वर्गीकरण के संबंध में उपसमिति ने पादप रोगजनक मॉलीक्यूट्स के संदर्भ हेतु एमएलओ (मायकोप्लाज्मा जैसे जीव) के स्थान पर फाइटोप्लाज्मा शब्द का सुझाव दिया जिसे 2004 में सर्वसम्मति से अपना लिया गया और आज भी इस शब्द का प्रयोग इन जीवाणुओं के लिए किया जाता है जिनका कृत्रिम रूप से संवर्धन संभव नहीं हो सका है। फाइटोप्लाज्मा के वर्गीकरण विज्ञान संबंधी समूह, 16 एसआर आरएनए जीन अनुक्रम (आरएफएलपी) के रेस्ट्रिक्शन डाइजेशन से उत्पन्न खण्डों के परिमाणों में भिन्नता अथवा 16 एस/23 एस स्पेसर क्षेत्रों से डीएनए अनुक्रमों की तुलना पर आधारित हैं।

भारत के फाइटोप्लाज्मा – संक्रमित पौधे, विस्तृत भौगोलिक वितरण दर्शाते हैं। सम्पूर्ण भारत में अभी तक 180 से अधिक पादप प्रजातियों के फाइटोप्लाज्मा द्वारा संक्रमित होने की पुष्टि की गई हैं। फाइटोप्लाज्मा के 16Sr I, 16Sr II, 16Sr VI एवं 16Sr XIV समूह के अंतर्गत आने वाले, मुख्य *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस, *के.* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया, *के.* फाइटोप्लाज्मा *ट्राइफोलाई, के.* फाइटोप्लाज्मा सायनोडोंटिस, *के.* फाइटोप्लाज्मा सैकेराई, *के.* फाइटोप्लाज्मा ओराइजी, विभिन्न पादप प्रजातियों से संबंधित फाइटोप्लाज्मा के मुख्य समूह हैं जो भारत में विभिन्न फसलों में रोग उत्पन्न कर उनकी पैदावार को प्रभावित करते हैं।

फाइटोप्लाज्मा की जीनोम संरचना

फाइटोप्लाज्मा का जीनोम परिमाण 530 केबी से 1350 केबी की सीमा में मापा गया है। गुणसूत्र के अतिरिक्त, फाइटोप्लाज्मा जीनोम्स के भीतर गोलाकार प्लाज्मिड्स भी होते हैं। अन्य मॉलीक्यूट्स

की भांति ही, फाइटोप्लाज्मा में कई जीवन उपयोगी जींस नहीं होती जो स्वायत्त जीवाणुओं यथा, *इशर्चिया कोलाई* में पायी जाती हैं और उपापचयन के लिए आवश्यक हैं। उदाहरणार्थ, मॉलीक्यूटस में अमीनो अम्लों, वसा अम्लों अथवा न्यूक्लियोटाइड का नए सिरे से संश्लेषण करने वाले जींस नहीं होती। मायकोप्लाज्मा एवं स्पायरोप्लाज्मा में न्यूक्लियोटाइड संश्लेषण के लिए एक साल्ब्रेज पाथवे होता है। स्पायरोप्लाज्मा, कुछ अमीनो अम्लों का संश्लेषण कर सकते हैं। अनुक्रमित किए गए फाइटोप्लाज्मा जीनोम्स में ऐसे गुण नहीं पाए गए हैं। चूंकि फाइटोप्लाज्मा में कोशिका उपापचयन हेतु आवश्यक समझी जाने वाली कई जींस नहीं पायी जातीं, इसलिए वे पोषकतत्वों के उद्ग्रहण के लिए मुख्यतया झिल्ली परिवहन प्रक्रियाओं पर निर्भर रहते हैं। ऐसा इस तथ्य से भी विदित होता है कि इनमें अनेक महत्वपूर्ण झिल्ली ट्रांसपोर्टर्स बनाए रखे गए हैं जो अन्य ग्राम–पॉजीटिव जीवाणुओं के समकक्ष हैं।

प्रबंधन

फाइटोप्लाज्मा से संक्रमित पौधों का प्रबंधन मुख्यतया रोगवाहक कीटों के नियंत्रण एवं खरपतवार सहित फसल के संक्रमित पौधों को उखाड़कर नष्ट करने पर केंद्रित है। कुछ प्रभावी प्रबंधन कार्यनीतियां निम्न प्रकार हैं:

- सामान्यतया, फसलों की रोगरोधी किस्मों के प्रजनन, रोपण तथा रोगवाहक कीटों की रोकथाम द्वारा फाइटोप्लाज्मा का नियंत्रण किया जाता है।
- टैट्रासायक्लिन, फाइटोप्लाज्मा की वृद्धि का संदमन तो करते हैं, किंतु इनका लगातार प्रयोग न किया जाय तो रोग के लक्षण पुनः दिखाई पड़ने लगते हैं।
- फाइटोप्लाज्मा को प्रभावी रूप से दूर करने एवं रोगजनक मुक्त पौधे तैयार करने के लिए नवीन विधि, क्रायोथेरेपी भी विकसित की गई है।
- फाइटोप्लाज्मा रोग के प्रसार की रोकथाम के लिए, आज भी कीटनाशियों का उपयोग, पर्णफुदकों आदि के नियंत्रणार्थ सर्वाधिक प्रभावी प्रबंधन विधि मानी जाती है। प्रभावी नियंत्रण हेतु पर्णफुदकों की संख्या एवं संक्रामकता के अनुसार समयोचित कीटनाशी अनुप्रयोग अत्यावश्यक है।

2. धान्य फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

गेहूं की पत्ती का पीली धारी और बौनापन रोग

भारत की प्रमुख खाद्यान्न फसलों में गेहूं का द्वितीय स्थान है तथा भारत के लगभग सभी राज्यों में इसकी खेती की जाती है। भारत में इसका अनुमानित क्षेत्रफल 31 मिलियन हैक्टर है। भारत में 2020–21 के दौरान 31.00 लाख है॰ क्षेत्र में 109.52 मिलियन टन गेहूं की औसत उपज अभी भी अन्य देशों की तुलना में कम है। गेहूं की फसल के उत्पादन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले कवक रोग हैं – पीला रतुआ, काला रतुआ, भूरा रतुआ, करनाल बन्ट, पर्ण झुलसा, चूर्णिल आसिता, आदि। इन रोगों द्वारा गेहूं की पैदावार में प्रतिवर्ष लगभग 15–20% की हानि होती है। वर्ष 2015–16 से इन्दौर में गेहूं की फसलों पर फाइटोप्लाज्मा जनित नई बीमारी की पहचान की गई, जिससे रोटी व ड्यूरम प्रजातियों में उत्पादता प्रभावित होती है।

मध्य भारत में गेहूं पर पत्ती धारी, पीलापन लक्षण प्रदर्शित करने वाली एक नई फाइटोप्लाज्मा जनित बीमारी की पहचान की गई। आईसीएआर–आईएआरआई क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, इंदौर, मध्य प्रदेश, भारत में गेहूं के प्रयोगात्मक खेतों में ड्यूरम तथा रोटी गेहूं के कुल 151 जीनप्ररूपों के सर्वेक्षण के दौरान नये फाइटोप्लाज्मा के लक्षण देखे गये एवं रोगी नमूनों में फाइटोप्लाज्मा की पहचान की गई।

चित्र 2.1: गेहूं की पत्ती का पीली धारी एवं बौनापन रोगः (क) रोगी पौधे का बौनापन एवं पत्ती का पीलापन; (ख) रोगी थानों में घासीय प्ररोह लक्षण; (ग) बौनापन एवं बालियों का न बनना; (घ) बालियों का छोटा रह जाना एवं दाने नहीं बनना; (च) छोटी पत्तियां एवं झुरमुट जैसी संरचना

लक्षणः प्रमुख रुप से हरिमाहीन धारियों के साथ हरिमाहीनता, पत्तियों का पीला पड़कर सूखना आदि लक्षण प्रति वर्ष अक्टूबर से मार्च के महीनों में दिखते हैं। रोगी पौधे बौने रह जाते हैं, पत्तियां पीली पड़ जाती हैं एवं रोगी पौधों की पत्तियों पर पीली धारियां बन जाती हैं। उनकी बालियों का आकार छोटा रह जाता है और दाने भी नहीं बन पाते (चित्र 2.1 क–च)। रोग का आपतन रोटी गेहूं के जीनोटाइप की तुलना में ड्यूरम गेहूं के जीनोटाइप्स में अधिक देखा गया। फाइटोप्लाज्मा रोग के लक्षण खेत की क्यारियों के मेंड़ की दिशा में अधिक दिखाई देते हैं।

रोगजनकः गेहूं का पत्ती पीली धारी और बौनापन रोग में फाइटोप्लाज्मा के 16Sr आरएनए अनुक्रमों के वंशावलिक संबंध द्वारा *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ओराइजी एवं *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा साइनोडान्टिस फाइटोप्लाज्मा उपभेद 16SrXI-B एवं 16SrXIV-A की पुष्टि की गई।

प्रसारः पर्णफुदक एवं पादप फुदक प्रजातियां *सोगाटेला फरसीफेरा, एक्जीटीएनस इंडिकस, बालक्लूथा रुब्रोस्ट्रियाटा* को गेहूं फाइटोप्लाज्मा उपभेद 16SrXIV-A के प्राकृतिक प्रसार तथा *सोगाटेला कोलोफॉन, को. युकमेकुलाटा* और *माईस्टास* प्रजाति के पर्णफुदकों को 16SrXIV-B उपसमूह से संबंधित फाइटोप्लाज्मा उपभेदों के पारेषण के लिए सकारात्मक पाया गया है। 16SrDNA अनुक्रम की तुलना द्वारा पर्णफुदक *एस. फरसीफेरा, बी. रुब्रोस्ट्रियाटा* और *कोफाना अनिमेकुलाटा* द्वारा गेहूं की धारी और बौनापन फाइटोप्लाज्मा विलय को संक्रमित गेहूं के पौधों से स्वस्थ गेहूं के पौधों तक संचरण परख में सफलतापूर्वक प्रसारित करने की पुष्टि की गई।

प्रबंधनः रोग–रोधी जातियों का चयन, रोगी पौधों को समय–समय पर लक्षण के आधार पर पहचान कर नष्ट करना एवं कीटनाशक रसायनों का प्रयोग कर रोग के आपतन को कम किया जा सकता है। गेहूं के खेतों में खरपतवार को नष्ट करके भी रोग की व्यापकता को कम किया जा सकता है।

धान का पीली पत्ती व बौनापन रोग

खाद्यान्नों में धान का महत्वपूर्ण स्थान है व भारत में धान की खेती का क्षेत्र बहुत व्यापक है। भारत में खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से धान की फसल का विशेष योगदान है। धान की खेती के इस बदलते परिवेश में जहां अधिक उत्पादन प्राप्त हो रहा है, वहीं किसानों को कीट–रोग व्याधियों से भी जूझना पड़ रहा है। झुलसा रोग, विगलन अंगमारी रोग, भूरा धब्बा रोग आदि बीमारियां धान की फसलों को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। भारत में धान की खेती लगभग 450 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की जाती है।

लक्षणः धान की फसल में फाइटोप्लाज्मा जनित बीमारी की पहचान की गई है जो पीली पत्ती व बौनापन लक्षण द्वारा पहचानी जाती है। यह रोग पौधों का विकास रोक देता है और पत्ती का रंग पीला या नारंगी हो जाता है (चित्र 2.2)। संक्रमित पौधों में सामान्यतः स्वस्थ पौधों की अपेक्षा कम बालियां निकलती हैं। पौधे का ऊपरी हिस्सा पीला व नारंगी हो जाता है और पत्तियां चितकबरी दिखाई देती हैं। पीलापन पत्ती के सिरे से प्रारंभ होता है और पर्णफलक तक फैल जाता है। रोगी पौधे छोटे व बौने हो जाते हैं। रोग के लक्षण खेतों की मेड़ों की तरफ पर अधिक देखे जाते हैं।

चित्र 2.2: धान का नारंगी पत्ती रोग

रोगजनक: यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ओराइजी द्वारा होता है जो फाइटोप्लाज्मा 16 Sr XI-B उप समूह का सदस्य है।

रोगवाहक और संचरण: मुख्य रोगवाहक हराधान पर्ण फुदक *नेफोटेटिक्स विरेसेन्स* और *रेसिलिया डोर्सेलिस* है, जो फाइटोप्लाज्मा को स्वस्थ फसलों में पारेषित करता है।

प्रबंधन: रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। रोगरोधी जातियों का चयन व खेतों में लक्षण आने की प्रारंभिक अवस्था में कीटनाशक दवाओं का प्रयोग रोग के आपतन को कम करने में सहायक पाया गया है।

मक्के का पत्ती लालिमा रोग

मक्का, चावल व गेहूं के बाद तीसरी सबसे महत्वपूर्ण अनाज की फसल है। भारत में लगभग 10 मिलियन टन मक्के का उत्पादन होता है। मक्के की फसल में कई तरह के फफूंद व जीवाणु द्वारा होने वाले रोग लगते हैं, जिससे भारत में मक्के की फसल को 13% तक नुकसान रिकार्ड किया गया। इन रोगों के अतिरिक्त मक्का की फसल पर जम्मू क्षेत्र में पत्ती लालिमा रोग की पहचान की गई है जो एक फाइटोप्लाज्मा जनित बीमारी है।

लक्षण: रोग पहले पत्तियों पर लाल रंग के छोटे–छोटे धब्बे के रूप में शुरु होता है और अंत में पूरी पत्ती गहरे लाल रंग की हो जाती है और रोगी पौधे का तना भी लाल रंग का हो जाता है (चित्र 2.3)। बाद में पत्तियां सूख जाती हैं और पौधा मर जाता है। यह रोग 40 से 50 दिन अवस्था वाले पौधों की पत्तियों पर अधिक दिखाई देता है और बाद में भुट्टे तक फैल जाता है। भुट्टे कम संख्या में बनते हैं और उनमें दानों की संख्या कम हो जाती है। विकासशील भुट्टे पूरी तरह से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

चित्र 2.3: मक्के का पत्ती लालिमा रोग

रोगजनक: यह रोग *कैंडीडेट्स* फाइटोप्लाज़्मा एस्टेरिस द्वारा होता है जो 16Sr 1-B उप समूह प्रभेद के सदस्य होने की पहचान की गई है।

प्रबंधन: रोग–रोधी प्रजातियों का चयन व रोगी पौधों को समय–समय पर खेतों से निकाल देने से रोग के आपतन को कम कर सकते हैं।

3. फलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

पपीते का फिलोडी रोग

पपीता पोषक तत्वों से भरपूर एक अत्यंत स्वास्थ्यवर्धक फल है, जिसका उपयोग पके तथा कच्चे फल के रूप में किया जाता है। विश्व के पपीता उत्पादक देशों में भारत एक अग्रणी राष्ट्र है और इसकी मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, तमिल नाडु, छत्तीसगढ़, बिहार, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, जम्मू कश्मीर और त्रिपुरा में खेती की जाती है।

आमतौर पर पपीते पर अनेक रोगों का आक्रमण होता है, परन्तु इनमें कवक एवं विषाणु जनित रोग प्रमुख हैं। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र एवं त्रिपुरा में पपीते की फसलों पर फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों की पहचान की गई है, जो पपीते की फसलों को काफी नुकसान पहुंचा रहे हैं जिससे उत्पादन भी काफी कम हो जाता है।

केरल प्रदेश में पपीते की पत्तियों पर फिलोडी रोग के लक्षण देखे गए, जिसमें पौधे के ऊपरी सिरे की पत्तियां छोटी व गुच्छेदार होकर चक्रनुमा संरचना बनाती हैं और पौधे का विकास रुक जाता है। साथ ही रोगी पौधों में फूल हरे पत्तियों जैसी संरचना में परिवर्तित हो जाते हैं और उनसे फल नहीं बन पाता है (चित्र 3.1ग, घ)।

चित्र 3.1: पपीते के फूलों का विरुपण (क,ख) और फिलोडी रोग (ग,घ) व कवच कुर्चिका रोग

चित्र 3.2: पपीते का छोटी पत्ती एवं विचेज ब्रूम रोग

उत्तर प्रदेश में गोरखपुर व फैजाबाद जिले में पपीते में पत्ती का पीला पड़ना, ऊपर से नीचे की तरफ सूखना (उल्टा सूखा रोग) व फूलों व फलों में विभिन्न विरुपतायें परिलक्षित होने की पहचान की गई है (चित्र 3.1क, ख), जिनसे पौधे के तने पर पुष्प पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाते और उनकी जगह छोटी–छोटी पत्तियां बन जाती हैं व फलों का आकार अत्यंत छोटा व अनुपयोगी हो जाता है। यदि कुछ पुष्प विकसित होकर फल भी बनते हैं तो उनमें विभिन्न प्रकार की कुरुपतायें आ जाती हैं, जिससे वे उपयोग में लाने लायक नहीं रह जाते।

पुणे, महाराष्ट्र में पपीते की बागवानी में विचेज ब्रूम एवं छोटी पत्तियों के विकसित होने की पहचान की गई है, जिसके कारण, पौधे की बढ़वार व फलों का उत्पादन नगण्य हो जाता है और फसलों को भारी नुकसान होता है (चित्र 3.2)। केरल, उत्तर प्रदेश व महाराष्ट्र में भी पपीते के इन रोगों के फाइटोप्लाज्मा द्वारा होने की पुष्टि की गई है।

रोगजनक व संचरण: पपीते में विभिन्न प्रकार के फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों की पहचान की गई है, जिनमें *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस व *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया प्रमुख हैं। प्रकृति में पपीते के फाइटोप्लाज्मा रोग पर्णफुदक की कई प्रजातियों द्वारा फैलते हैं, जबकि बीज द्वारा इनके संचरण के बारे में अभी तक कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं है।

प्रबंधन : रोगी पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। पर्ण फुदकों के नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एसए (3 मि.लि. मात्रा प्रति 10 लिटर पानी में मिलाकर) या थाईमेक्सान 25% डब्ल्यू.जी. (2 ग्रा./10 लिटर) का घोल पौधे पर छिड़कने से फाइटोप्लाज्मा के संचरण को रोका जा सकता है। पपीते के बगीचे में खरपतवारों को समय–समय पर साफ कर पर्णफुदक द्वारा रोग के फैलाने की संभावना को कम किया जा सकता है।

आम वृक्ष में मालफारमेशन (गुम्मा) रोग

आम भारतवर्ष का एक प्रमुख और लोकप्रिय फल है। विश्व के करीब 80 देशों में इसका उत्पादन होता है, जिसमें भारतवर्ष एक प्रमुख देश है जहां विश्व के कुल आम उत्पादन का 45 प्रतिशत भाग उत्पन्न होता है। भारत में कुल 2500 हजार हे. में आम की बागवानी की जाती है। फिर भी उत्पादन क्षमता के अनुसार विश्व में इसका स्थान नीचे है। आम के कम उत्पादन के अनेक कारणों में विभिन्न रोग व कीट शामिल हैं, जिनके कारण उत्पादन को प्रतिवर्ष भारी नुकसान पहुंचता है। इनमें से कुछ प्रमुख रोग आर्थिक दृष्टि से काफी हानिकारक तथा सफल उत्पादन के लिए चुनौतीपूर्ण हैं, जिनसे आम के फलों के निर्यात में काफी कमी आती है। आम के प्रमुख रोगों में मालफारमेशन रोग, जिसे गुम्मा रोग के नाम से भी जानते हैं, आम की बागवानी के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण रोग है।

गुम्मा रोग प्रायः दो प्रकार के होते हैं: वानस्पतिक गुम्मा तथा पुष्पीय गुम्मा। वानस्पतिक गुम्मा प्रायः नर्सरी या पौध अवस्था में देखा जाता है। प्रभावित पौधों की बढ़वार रुक जाती है एवं उनमें विकृति हो जाती है, पर्व संधियां फूल जाती हैं और पर्व अत्यन्त छोटे व अविकसित रह जाते हैं। ऐसे पौध के गुम्मे में ऊपरी भाग गुच्छे का रूप धारण कर लेता है। इस लक्षण को बंची टाप भी कहते हैं।

पुष्पीय गुम्मे में बौर के मुख्य पर्व छोटे रह जाते हैं तथा गुच्छों की गौण शाखाओं की लम्बाई भी छोटी रह जाती है, जिससे फूल और बौर गुच्छे के रूप में परिलक्षित होते है। पुष्पकलियां वानस्पतिक कलिकाओं में परिवर्तित हो जाती हैं और ऐसे गुच्छे में छोटी– छोटी एवं पतली पत्तियां निकलती है, जिससे बौरों में फूल की कलियां बहुत कम खुलती हैं और हरी रह जाती हैं (चित्र 3.3)। गुम्मा ग्रसित पुष्पगुच्छों में फूल एवं फल विकसित नहीं हो पाते, और आम की फसल को काफी नुकसान पहुंचता है।

चित्र 3.3: आम का गुम्मा रोग: (क) गुम्मा ग्रसित पुष्पगुच्छ एवं छोटी पत्तियां; (ख) पुष्पगुच्छ का सूखना व नष्ट होना

रोगजनक: गुम्मा ग्रसित पुष्पगुच्छों में *फ्यूजेरियम मैन्जीफेरी* नामक फंफूदी की पहचान की गई है किन्तु अभी हाल ही में देश के विभिन्न प्रदेशों से एकत्रित गुम्मा रोग के नमूनों में फाइटोप्लाज्मा की पहचान की गई है, जो यह दर्शाता है कि फंफूदी के साथ–साथ फाइटोप्लाज्मा (*कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस) भी आम के गुम्मा रोग के लिए उत्तरदायी है।

रोगचक्र: आम का गुम्मा रोग प्रकृति में कैसे फैलता है, इसकी पूर्ण जानकारी अभी उपलब्ध नहीं है। कुछ वैज्ञानिकों ने इस रोग की माइट द्वारा संचरण होने की पुष्टि की है।

प्रबंधन: यदि मालफारमेशन ग्रसित गुच्छों व टहनियों को काट कर हटा दिया जाए तो रोग के प्रकोप को काफी हद तक कम किया जा सकता है। नेफथिलिक एसिटिक अम्ल (200 पी.पी.एम.) का अक्टूबर के पहले सप्ताह में छिड़काव करने तथा दिसंबर के आखिरी सप्ताह या जनवरी में निकले हुये बौर को तोड़कर नष्ट करने से भी इस रोग के आपतन में कमी देखी गई है। नर्सरी व पौधशाला में यदि गुम्मा रोग के लक्षण दिखें तो उन्हें तत्काल नष्ट कर देना चाहिए जिससे यह रोग स्वस्थ पौधों मे न फैल सके।

अनार का पीली पत्ती व ह्रासमान रोग

भारतवर्ष में अनार की बागवानी 131 हजार हैक्टर क्षेत्र में की जाती है, तथा देश में 1.346 हजार टन फल का उत्पादन होता है। इस फल की पौष्टिकता एवं स्वास्थ्य लाभ, छोटे क्षेत्रफल से उच्च

आर्थिक लाभ तथा निर्यात की बढ़ती मांग के कारण किसान अनार की खेती की तरफ आकर्षित हो रहे हैं। अनार में विभिन्न रोग जैसे बैक्टीरियल ब्लाइट (झुलसा), विल्ट (मुरझान), सड़न और कीट आर्थिक नुकसान पहुंचाते हैं। भारतवर्ष में अनार की बागवानी प्रमुखतः महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिल नाडु, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों में की जाती है। भारत में जीवाण्विक झुलसा अनार उत्पादन वाले क्षेत्रों में ज्यादा आर्थिक नुकसान पहुंचा रहा है, किन्तु हाल ही में महाराष्ट्र के बारामती जिले में अनार की बागवानी में फाइटोप्लाज्मा द्वारा होने वाले पीलापन व क्षीण रोग की पहचान की गई है, जिससे अनार के पौधे में फल की पैदावार काफी कम हो गई है।

लक्षणः इस रोग में अनार के पौधे की कुछ टहनियों की पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं और बाद में पूरी टहनी सूख जाती हैं (चित्र 3.4 क–ख)। संक्रमित पत्ते पीले होकर जमीन पर गिर जाते हैं। रोगी पौधों में फूल व फल कम विकसित होते हैं। यदि कुछ फल बनते भी हैं तो उनका आकार छोटा व विकृत हो जाता है। धीरे–धीरे पूरा पौधा सूखकर नष्ट हो जाता है (चित्र 3.4 ग–घ)।

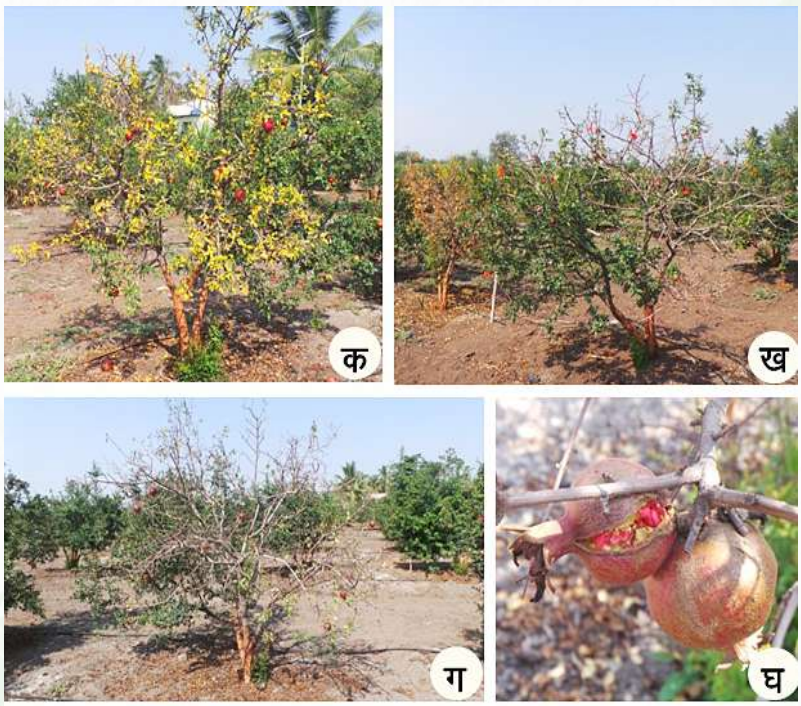

चित्र 3.4: अनार का पीली पत्ती एवं ह्रासमान रोगः (क) पीली पत्ती रोग; (ख,ग) रोगी पौधे का सूख जाना; (घ) फलों का फट जाना

रोगजनकः यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस नामक फाइटोप्लाज्मा से होता है।

प्रबंधनः रोगमुक्त रोपण सामग्री का उपयोग, बगीचे की स्वच्छता एवं समय–समय पर कीटनाशक रसायनों का छिड़काव कर रोग को फैलने से नियंत्रित किया जा सकता है। रोगी पौधों को नष्ट कर देना भी एक उत्तम उपाय है। बगीचे को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए।

अंगूर की पत्तियों का पीला एवं लालिमा रोग

अंगूर भारतवर्ष में फलों की एक महत्वपूर्ण फसल है, जिससे किसानों को अच्छी आय अर्जित होती है। अंगूर मुख्यतः महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिल नाडु, कर्नाटक व मध्य प्रदेश में अधिकतर क्षेत्रफल में उगाया जाता है। अंगूर में मृदुल आसिता, चूर्णिल आसिता एवं पर्ण कुंचन विषाणु रोग के अलावा फाइटोप्लाज्मा जनित रोग भी नुकसान पहुंचाते हैं। पूरे यूरोप में अंगूर की फसलों में पीलापन एवं फ्लोरेंस डोरी रोग प्रमुख हैं, जिससे प्रतिवर्ष कई लाख अमेरिकन डॉलर का नुकसान होता है। महाराष्ट्र से अंगूर में पीली पत्ती एवं पत्तियों का लालिमा एवं पर्ण कुंचन रोग की पहचान की गई है। इन रोगों में ग्रसित पौधों की पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं (चित्र 3.5 क व ग)। कुछ पौधों के ऊपरी सिरे की टहनियों की पत्तियां सुर्ख लाल रंग की हो जाती हैं (चित्र 3.5 ख व घ) और पत्तियों के किनारे सिकुड़ जाते हैं, जिससे ऊपरी सिरा सूखने लगता है और उनमें पुष्पगुच्छ व फल विकसित नहीं हो पाते हैं। यदि फल बनते भी हैं तो बहुत छोटे या अंगूर दानों की संख्या व गुणवत्ता बहुत कम व अविकसित रह जाती है। फल खाने व विपणन हेतु उपयुक्त नहीं रह जाते और फसलों को बहुत नुकसान होता है।

चित्र 3.5: अंगूर का पीली पत्ती (क,ग) व लाल पत्ती रोग (ख, घ)

रोगजनक: भारतवर्ष में यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया नामक फाइटोप्लाज्मा द्वारा होता है।

प्रबंधन: रोगी टहनियों को सीजन में काटने से पर्णफुदक द्वारा रोग को स्वस्थ पौधे में फैलने से रोका जा सकता है। साथ ही अंगूर के बगीचे का नियमित निरीक्षण, संक्रमित पौधे की टहनियों को काट कर नष्ट करना, कीटनाशक दवाओं का प्रयोग एवं रोग मुक्त कलमों का उपयोग कर रोग के आपतन को कम कर सकते हैं।

आड़ू का छोटी पत्ती एवं ह्रासमान रोग

भारत में आड़ू की खेती मुख्यतः पहाड़ी राज्यों जैसे जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, अरुणाचल प्रदेश एवं सिक्किम में की जाती है। विश्व के अन्य प्रमुख आड़ू उत्पादक देशों की तुलना में हमारे देश में प्रति हैक्टर उत्पादकता काफी कम है, जोकि लगभग 8.13 प्रति हैक्टर अंकित की गई है। इसका कारण विभिन्न प्रकार के रोग व कीट हैं। आड़ू में फाइटोप्लाज्मा जनित छोटी पत्ती रोग, पत्ती का लालिमा रोग व पौधे का बौनापन रोग की भारतवर्ष में पहचान की गई है।

लक्षणः यह रोग पौधशाला तथा बगीचों, दोनों स्थान पर वृक्षों को प्रभावित करता है। इस रोग से ग्रसित वृक्षों में पत्तियों की संख्या कम हो जाती है। पौधों के ऊपरी भाग व कई टहनियों में पत्तियों का लाल व पीला पड़ना, किनारों से मुड़ना, आकार छोटा होना तथा वृद्धि में रूकावट आना प्रारंभिक लक्षण हैं (चित्र 3.6)। इस रोग के लक्षण फैलकर पूरे पेड़ को क्षीण कर देते हैं। संक्रमित वृक्षों पर फल कम लगते हैं और उनका आकार भी छोटा हो जाता है। इस रोग के लक्षण मार्च–अप्रैल से लेकर जुलाई–अगस्त महीनों में ज्यादा दिखाई देते हैं।

चित्र 3.6: आड़ू का पीली पत्ती व ह्रासमान रोग

रोगजनकः इस रोग की *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस, *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया और एल्म एलोज ग्रुप के फाइटोप्लाज्मा समूह द्वारा भारत में आड़ू के वृक्षों पर पहचान की गई है।

संचरण : फाइटोप्लाज्मा प्रणालीगत तरीके से रोगी पौधों के अंतर्गत विद्यमान रहते हैं, जिससे वे अगले पीढ़ी दर पीढ़ी फसलों को नुकसान करते हैं। फाइटोप्लाज्मा संचरण मुख्य रूप से रोगग्रस्त कलमों से होता है। इसके अलावा विभिन्न पर्णफुदक व सिलिड प्रजातियों, फाइटोप्लाज्मा को रोगी वृक्ष से स्वस्थ वृक्ष तक फैलाने में समर्थ है, जिनका नियंत्रण कर रोग के आपतन को कम किया जा सकता है।

प्रबंधनः यह रोग रोगी पौधों की कलमें लगाने से होते हैं। इसलिए स्वस्थ पौधे की कलम ही बगीचों में लगाना चाहिए। फाइटोप्लाज्मा जनित लक्षण पौधों पर दिखते ही या तो उन्हें उखाड़कर नष्ट कर दें या संक्रमित टहनियों को काट दें। बगीचों में फूल लगने के समय कीटनाशक दवाओं जैसे इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एस.एल. (3 मि.लि./10 लिटर) एवं थाईमैक्सान 25% डब्ल्यू.जी. (2 ग्रा./10 लिटर) का छिड़काव कर पर्णफुदकों एवं सिलिड कीटों का नियंत्रण करने पर रोग के फैलने या कम करने में सहायता मिलती है। रोगरोधी प्रजातियों का चयन करना चाहिए। खरपतवारों को समय–समय पर उखाड़ कर नष्ट रने से भी रोग के आपतन को कम किया जा सकता है।

नींबू वर्गीय पौधे में फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

नींबू वर्गीय फलों में संतरा, नींबू, किन्नो एवं मौसमी आदि प्रमुख फसलें हैं। नींबू वर्गीय फसलों में अनेक प्रकार के रोगकारक सूक्ष्मजीवों एवं साइट्रस ग्रीनिंग जीवाणु द्वारा विभिन्न रोग व्याधियों का प्रकोप होता है। इसमें साइट्रस ग्रीनिंग (हरितमा) एवं ह्रासमान रोग प्रमुख है।

हरितमा रोगः नींबू का हरितमा रोग नींबू वर्गीय पौधों का सबसे विध्वंसकारी रोग है। यह रोग नींबू की सभी प्रजातियों एवं किस्मों को हानि पंहुचाता है। पत्तियों का छोटा रह जाना, पीला पड़ जाना, घनी पतियों का आना इसके मुख्य लक्ष्ण है। पत्तियों में विविध प्रकार की पर्ण हरिमाहीनता पायी जाती है (चित्र 3.7 क–छ)। यह रोग ग्राफ्टिंग एवं सिट्रस सिल्ला (*डायफोरिना सिट्राई*) कीट द्वारा फैलता है। रोग ग्रसित पौधों में पत्तियां एवं फल अत्यधिक गिरने लगते हैं और पौधा बौना रह जाता है।

चित्र 3.7: (क) नींबू ह्रासमान रोग, (ख) पीली पत्ती रोग, (ग) हरीतिमा रोग, (घ) पीली पत्ती रोग, (च) छोटी पत्ती व विचेज ब्रूम रोग, (छ) मोजैक व पीली पत्ती रोग

रोगी पौधों में फल अधिकांशतः पकने पर भी हरे रह जाते है और अगर ऐसे फलों को सूर्य के प्रकाश के विपरीत देखा जाता है तो उनके छिलकों पर स्पष्ट पीला धब्बा दिखाई देता है। रोगी पौधों के फल छोटे एवं विकृत आकार, कम रस एवं अरोचक स्वाद के कारण मूल्यहीन हो जाते हैं।

प्रबंधनः चूंकि यह रोग ग्राफ्टिंग से फैलता है, इसलिए कलिकाओं को हरितमा रोग रहित पौधों से लेकर प्रयोग करना चाहिए। बीज पौधों (न्यूसेलर सीड़लिंग्स) को उगाने से भी यह रोग कम फैलता है। रोग के वाहक कीट सिट्रस सिल्ला का नियन्त्रण करने के लिए अंतरप्रवाही कीटनाशक का छिड़काव करना चाहिये।

ह्रासमान एवं पश्चमारी रोगः उत्तर पूर्व प्रदेशों में नींबू वर्गीय पौधों की कई प्रजातियां उगाई जाती हैं, जिनमें विगत वर्षो में फाइटोप्लाज्मा, हरितमा एवं ट्रिस्टेजा विषाणु द्वारा पुराने बाग लगातार सूखकर नष्ट हो रहे हैं और फसल का उत्पादन बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। इस रोग में शाखायें शीर्ष से लेकर नीचे की ओर पीली होकर सूख जाती हैं (चित्र 3.7 क व ख)। पत्तियां भी पीली पड़ जाती है और सूख जाती हैं। अन्ततः पूरा पौधा सूख जाता है।

रोगी पौधों में पुष्प व फल विकसित नहीं हो पाते, यदि कुछ बची हुई हरी टहनियों पर फल बनते भी हैं तो उनका आकार छोटा व विकृत हो जाता, जो उपयोग व बाजार में विक्रय हेतु नहीं रह जाता है।

रोगजनकः यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस, *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया, साइट्रस ग्रीनिंग जीवाणु (*कैन्डिडेटस* लेबरीबैक्टर एसियाटिकस) तथा *साइट्रस ट्रिस्टेजा* नामक विषाणु द्वारा एकल या सम्मिलित प्रभाव से उत्पन्न होता है।

प्रबंधनः नये पौधों के प्रवर्धन के लिए हमेशा स्वस्थ एवं प्रमाणित कलिकाओं का प्रयोग करना चाहिए। इस रोग को फैलाने वाले कीटों जैसे सिट्रस एफिड, पर्णफुदक एवं साइलिड कीट के लिए इमिडाक्लोप्रिड कीटनाशक (3 मि.लि./10 लिटर पानी में) का सामयिक छिड़काव करके रोग को दूसरे बाग में फैलने से रोका जा सकता है। रोग से ग्रसित सभी टहनियों एवं शाखाओं को मानसून से पहले कांट–छांट कर जला देना चाहिए। समय– समय पर पौधशाला का निरीक्षण कर रोगी पौधों की सूखी टहनियों को काट कर नष्ट करने से रोग के आपतन को कम किया जा सकता है।

अनन्नास का विचेज ब्रूम रोग

भारत में अनन्नास की खेती पश्चिमी समुद्री तटीय क्षेत्र और उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में समुद्र तल से 1000–2000 फुट की ऊंचाई पर की जाती है। अनन्नास की खेती एक लाभदायक व्यवसाय है। मुख्यतः भारत में कर्नाटक, केरल, पश्चिम बंगाल के उत्तर–पूर्वी भागों, बिहार, गोवा में इसकी खेती बहुतायत से की जाती है। भारत में अनन्नास की क्यू, जिआनट क्यू, सरोलेट रोटचील्ड, क्वीन, जलधुप, लखत आदि प्रमुख किस्में हैं।

अनन्नास में मेयली, स्केल कीट और तना सड़न प्रमुख रोग हैं, परंतु हाल के वर्षों में त्रिपुरा के बारामुरा क्षेत्र में अनन्नास की क्वीन प्रजाति में विचेज ब्रूम की पहचान की गई है, जिसमें पौधे की पत्तियां ऊपर की ओर गुच्छे के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं और अनन्नास का फल विकृत हो जाता है। उसमें रस की मात्रा कम हो जाती है। खेतों में दूर से इस बीमारी के लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं (चित्र 3.8)। यह रोग फाइटोप्लाज्मा जनित रोग है, जिससे अनन्नास की फसलों को काफी नुकसान पहुंचता है।

रोगजनकः अनन्नास का विचेजब्रूम रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज़्मा एस्टेरिस प्रभेद के कारण होता है।

प्रबंधनः अभी तक इस रोग को फैलाने वाले पर्णफुदक की पहचान संभव नहीं हो सकी है। रोगी पौधों को समय–समय पर खेतों से निकाल कर नष्ट करने और रोगरोधी जातियों का चयन कर रोग से निदान संभव है।

चित्र 3.8. त्रिपुरा में अनन्नास के क्वीन प्रजाति में विचेज ब्रूम रोग (क), क्यू प्रजाति में विचेजब्रूम रोग (ख)

चीकू (सपोटा) का फिलोडी एवं समतल तना रोग

चीकू की खेती देश मे एक लोकप्रिय फल के रूप में की जाती है। इसकी खेती कम लागत में अधिक मुनाफे के कारण तेजी से लोकप्रिय हो रही है। भारत में इसकी खेती आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा तमिल नाडु आदि राज्यों में की जाती है। आर्द्रता वाली जलवायु में इसकी फसल वर्ष में दो बार ली जा सकती है, जबकि शुष्क जलवायु में, यह वर्ष में केवल एक ही फसल देता है। उचित प्रबंधन से की गई खेती में 15 से 20 टन फल प्रति हैक्टर प्राप्त कर सकते हैं।

चीकू में कई प्रकार के कीट एवं रोग लगते हैं, जिसमें फल छेदक कीट, मिली बग कीट, पत्ती धब्बा रोग एवं सूटी मोल्ड आदि प्रमुख हैं। चीकू में फाइटोप्लाज्मा द्वारा फिलोडी एवं समतल तना रोग होने की पहचान की गई है, जिससे फसल के उत्पादन में काफी नुकसान देखा गया है।

लक्षणः चीकू के वृक्षों में फाइटोप्लाज्मा जनित रोग पुराने वृक्षों में ज्यादा देखने को मिलते हैं। रोगी वृक्षों की कुछ शाखाओं पर पत्तियां धागेनुमा रचना में परिवर्तित हो जाती हैं और उनमें पुष्प एवं फल

नहीं विकसित हो पाते और ऐसे वृक्षों व शाखाओं में फल का उत्पादन नगण्य हो जाता है। धीरे–धीरे फिलोडी लक्षण वाली शाखाएं एवं वृक्ष सूखने लगते हैं (चित्र 3.9) और चीकू फसल को गंभीर नुकसान होता है।

फाइटोप्लाज्मा द्वारा होने वाला दूसरा लक्षण समतल तना रोग है, जिसमें चीकू वृक्ष की नई पनप रही शाखाएं चौड़ी एवं समतल हो जाती हैं। इसमें पत्तियों की संख्या कम एवं छोटी हो जाती हैं और समतल तने के ऊपरी भागों में पत्तियों का एक गुच्छ बन जाता है जो विचेजब्रूम लक्षण कहलाता है। ऐसी टहनियों में पुष्प एवं फल बिल्कुल विकसित नहीं होते। यह रोग चीकू वृक्षों में 10 से 12 वर्ष वाले बागों में अधिक देखा जाता है। भारत में चीकू में फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों की पहचान महाराष्ट्र, त्रिपुरा, दिल्ली आदि स्थानों पर की गई है।

रोगजनकः चीकू का फिलोडी रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ट्राइफोलाई एवं चीकू का समतल तना रोग *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा सइानोडान्टिस नामक फाइटोप्लाज्मा द्वारा होता है।

प्रबंधनः रोगी टहनियों को काटना एवं शुरुआती अवस्था में रोगी पौधों को नष्ट करना एवं समय–समय पर कीटनाशी रसायनों के प्रयोग से रोग के आपतन को कम कर सकते हैं। साथ ही रोग रोधी प्रजातियों का प्रयोग रोग के रोकथाम में अच्छा विकल्प साबित होगा।

चित्र 3.9: चीकू के फाइटोप्लाज्मा जनित लक्षण। (क) फिलोडी; ख, ग एवं (घ) विचेज ब्रूम व समतल तना रोग

4. फूलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

भारत में 3.24 लाख हेक्टेयर भूमि में फूलों की खेती की जाती है और इनका लगभग 2785 मिलियन टन उत्पादन है। 1990 के दशक में खुले फूलों (loose flowers) का व्यापार लगभग 12 करोड़ रुपये था जो 2015 में बढ़कर 1000 करोड़ रुपये का हो गया। भारत में फ्लोरीकल्चर क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है। फूलों की खेती कई देशों में काफी प्रगति कर रही है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ती मांग के साथ लगातार फूलों की खेती का वृहत विस्तार हो रहा है। कर्तित फूल (cut flowers) सबसे बड़े खंड का प्रतिनिधित्व करते है।

भारतीय फूलों की खेती का मुख्य आधार खुले क्षेत्र में पारंपरिक फूल की बढ़ती मांग है, जिसके तहत कर्तित फूलों का उत्पादन दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। फूलों की खेती में विषाणुओं, वायराइड्स और प्रोकैरियोट्स द्वारा जनित रोग एक प्रमुख चिंता का विषय है, जो कीटों द्वारा आसानी से प्रसारित होते हैं। पिछले दशक में फूलों की फसलों पर फाइटोप्लाज्मा जनित कई रोगों की पहचान की गई है जिनके बारे में उत्पादकों में अपर्याप्त जानकारी है, जिसके कारण फाइटोप्लाज्मा रोग पुष्पीय फसलों को अत्यधिक नुकसान पहुंचा रहे हैं। वर्तमान में फूलों की लगभग तीस से ज्यादा प्रजातियॉ फाइटोप्लाज्मा रोगों से ग्रसित पायी गयी है, जिनके कारण इनके उत्पादन में अत्यधिक कमी आ रही है। अन्य फसलों की तरह, पुष्पीय पौधे भी रोगजनकों जैसे कवक, जीवाणु, विषाणु, फाइटोप्लाज्मा, आदि से प्रभावित होते हैं। फाइटोप्लाज्मा रोगजनक एक प्रमुख महत्वपूर्ण समूह है जो फूलों के विकास और विपणन मापदंडों को अत्यधिक नुकसान पहुंचाते हैं। सजावटी पौधे विशेष रूप से व्यावसायिक रूप से अधिक प्रभावित होते हैं। फाइटोप्लाज्मा बीमारियों द्वारा कई वाणिज्यिक कर्तित एवं खुले फूलों और सजावटी फूलों के वाणिज्यिक उत्पादन में बाधा है जो फूलों की गुणवत्ता को कम करके, उनके विपणन को नुकसान पहुंचाते है। अब तक भारत में 26 से अधिक सजावटी पौधों की प्रजातियां फाइटोप्लाज्मा रोग से संक्रमित करती पाई गई हैं। भारत में छह विभिन्न फाइटोप्लाज्मा समूहः एस्टर एलोज (16SrI), पीनट वीचेजब्रूम (16SrII), तिपतिया घास प्रसार (16SVI), पीजनपी विचेजब्रूम (16rIX), राइस येलोड्वार्फ (16SrXI) और बरमूडा वाईट लीफ (16Sr XIV) फाइटोप्लाज्मा समूह प्रमुख रूप से फूलों की विभिन्न फसलों को प्रभावित करते हैं। प्रमुख प्रबधंन प्रथाओं में फाइटोप्लाज्मा रोग प्रबंधन के लिए टेट्रासाइक्लिन उपचार, वाहक निंयत्रण के लिए कीटनाशक का उपयोग विभिन्न फाइटोप्लाज्मा के उत्सर्जन और उन्मूलन के लिए किया जा रहा है।

लक्षणः फूलों की विभिन्न किस्मों में फूलों के आकार में विकृति एवं गुच्छों का निर्माण हो जाता है एवं फूलों के रंगीन भाग और फूलों की पंखुड़ियां हरी हो जाती हैं। एक फूल में कई कलियां बनने से विकृति आ जाती है और फूल बाजारों में बिक्री लायक नही रह जाते। भारतवर्ष में फाइटोप्लाज्मा सभी महत्वपूर्ण फूलों की फसलों जैसे गुलाब, गेंदा, चमेली, बोगनवीलिया, गुलदाउदी, एस्टर, मौसमी

फूल आदि प्रजातियों को प्रभावित करता है। भारत में मुख्य रुप से फाइटोप्लाज्मा पुष्पीय फसलों में विभिन्न प्रकार के लक्षण परिलक्षित करते हैं, जिनमें गुलाब में फिलोडी, बढ़े हुए अक्षीय कली विकास, पिटूनिया का फ्लैट तना, चमेली की छोटी पत्ती एवं पीला रोग, गेंदा का फिलोडी व बौनापन एवं गुलदाउदी का फिलोडी रोग, आदि प्रमुख हैं।

गेंदा के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

भारत में गेंदे की दो प्रजातियां अफ्रीकन मैरीगोल्ड (*टेजेटस इरेक्टा*) एवं फ्रेंच मेरीगोल्ड (*टेजेटस पैटुला*) प्रजातियां बोई जाती हैं, जो एस्टेरेसी परिवार के सदस्य हैं। इसके फूल सुनहरे, नारंगी, पीला, गहरे लाल और सफेद रंग के होते है। छोटी पत्ती और समतल तना के साथ–साथ पौधे का बौनापन एवं पीलापन फाइटोप्लाज्मा द्वारा होने वाले प्रमुख रोग लक्षण हैं जो *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस (16SrI समूह) एवं *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया समूह के सदस्य द्वारा होते हैं (चित्र 4.1)।

चित्र 4.1: गेंदा में फाइटोप्लाज्मा जनित रोग के लक्षणः (क) मेक्सिन प्रजाति के गेंदे के फूल, (ख) फ्रेंच प्रजाति के गेंदे के फूल, (ग) कवक कुर्चिका, (घ) फिलोडी, (च) समतल तना, (छ) पीली पत्ती, (ज) बौनापन एवं पीलापन रोग

डेजर्ट गुलाब

डेजर्ट गुलाब (*एडेनियम ओसम*) एपोसाईनेसी परिवार का सदस्य है जिसमें छोटी पत्ती व फिलोडी रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं। मांसल तने व आकर्षित पत्तियों और चमकीले रंग के फूल के लिए यह विश्वभर में उगाया जाता है। फाइटोप्लाज्मा ग्रसित पौधों में पत्तियां छोटी व पतली हो जाती हैं और रोगी पौधों में पुष्पों की संख्या काफी कम हो जाती है। यदि फूल बनते हैं तो उनका आकर्षक व प्राकृतिक रंग वास्तविक नहीं रह पाता और वे विकृत हो जाते हैं (चित्र 4.2)। इस रोग के *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस द्वारा होने की पहचान उत्तर प्रदेश व राजमुंदरी (आंध्र प्रदेश) में की गई है।

चित्र 4.2: डेजर्ट गुलाब में पीलापन व छोटी पत्ती रोग

गुलाब के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

गुलाब बारहमासी फूल वाला पौधा है जो रोजेसी परिवार का सदस्य है। भारत में गुलाब की 100 से अधिक प्रजातियां लोकप्रिय हैं। गुलाब सबसे लोकप्रिय सजावटी पौधा है। वाणिज्यिक कर्तित फूलों की खेती हेतु विभिन्न प्रदेशो में इसकी खेती की जाती है। फाइटोप्लाज्मा रोग के कारण गुलाब के पौधे में छोटे पत्ती के संदिग्ध लक्षण, पीला पड़ना, इंटर्नोड्स का छोटा होना, फिलोडी, फूल का विरूपीकरण लक्षण उत्पन्न होते हैं जो एस्टर येलोज (16SrI) और पीनट विचेजब्रूम ग्रुप (16SrII) फाइटोप्लाज्मा के सदस्य हैं।

चित्र 4.3: गुलाब में फाइटोप्लाज्मा द्वारा होने वाले विभिन्न लक्षण। फूलों की अपरुपता कः फिलोडी रोग व ख,गः फिलोडी; घः छोटी पीली पत्ती; चः द्वितीयक सहायक कलिकाओं का प्रचुरोदयवन; छः पीली पत्ती रोग

गुलदाउदी का फिलोडी रोग

गुलदाउदी, पौधे एस्टेरेसी परिवार के सदस्य हैं जो एशिया और उत्तर पूर्वी यूरोप के मूल पौधे हैं। भारत में भी इनके आकर्षक रंग व सुंदरता के लिए शीत ऋतु में इनकी व्यापक रूप से खेती की जाती है। गुलदाउदी में पांच अलग– अलग फाइटोप्लाज्मा समूहों 16SI-B, 16SrII-A, 16SrII-D, 16SrVI-D और 16rXIV की पुष्टि की गई जिनके संक्रमण के कारण नई दिल्ली, कर्नाटक,

महाराष्ट्र (बांद्रा और पुणे) और आंध्र प्रदेश (राजमुंदरी) में 16Sr डीएनए जीन अनुक्रम तुलना के आधार और विश्लेषण द्वारा फाइटोप्लाज्मा प्रभेदों की पहचान की गई। फाइटोप्लाज्मा रोग के कारण गुलदाउदी के पौधों में फूलों का आकर्षक रंग कम होना या पूरा हरे रंग में परिवर्तित हो जाना (चित्र 4.4 एवं 4.5), फिलोडी (जिसमें फूल हरा रह जाता है और पुष्प विकसित नहीं हो पाते) एवं पूरा पौधा छोटा व फूलो की संख्या कम हो जाना प्रमुख लक्षण हैं जिससे फूल विपणन लायक नहीं रह जाते (चित्र 4.4 ख, ज, च, झ)।

चित्र 4.4: गुलदाउदी की विभिन्न प्रजातियों में फिलोडी (क), कवक कुर्चिका (ख), फूलों की अपरूपता (ग व घ), फिलोडी लक्षण की प्रचण्डता (च व ज), पत्ती का पीलापन (छ) एवं छोटी पत्ती व फिलोडी रोग (झ)

चित्र 4.5: गुलदाउदी में फिलोडी फाइटोप्लाज्मा के लक्षण

ग्लेडियोलस

ग्लेडियोलस पौधे इसीडेसी परिवार के सदस्य हैं जो एक महत्वपूर्ण सजावटी और कर्तित फूलों की फसलों के रूप में पूरे भारत में उगाये जाते हैं। रोगी पौधों में फूलों का पीलापन, फलों का रंग हरा होना, फूल स्पाइक्स के पीलापन के साथ ही फूलों की संख्या कम व उनमें विरुपता आ जाती है। पूरे स्पाइक में पुष्प का आकार विकृत होकर उपयोग लायक नहीं रह जाता (चित्र 4.6)। यह रोग *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस द्वारा होता है।

चित्र 4.6: ग्लेडियोलस में फूल अपरूपता (क) एवं जड़ विरुपता रोग (ख)

चमेली का छोटी पत्ती व बौनापन रोग

चित्र 4.7: चमेली का छोटी पत्ती (क), बौनापन व पीली पत्ती रोग (ख, ग)

चमेली भारत के दक्षिण प्रदेशों में सर्वाधिक पसंद की जाने वाली फूलों के परिवार की सदस्य है जो यूरोप, एशिया और अफ्रीका के क्षेत्र में उगाई जाती है। चमेली एक लोकप्रिय सजावटी पौधा है और पारंपरिक रूप से फूल और चाय के लिए उपयोग में लाया जाता है। व्यावसायिक रूप से पश्चिमी एवं दक्षिणी राज्यों में इसकी खेती की जाती है। भारत में चमेली के पौधों में छोटी व पीली पत्ती वाले फाइटोप्लाज्मा रोग की पहचान की गई (चित्र 4.7), जिसमे रोग के कारण पौधे की शाखाएं छोटी रह जाती है और उनमें फूलों की कलियां काफी कम संख्या में विकसित हो पाती हैं और फूलों का आकार छोटा होने से व्यापारिक उपयोग में नहीं आता है। यह रोग *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस द्वारा होता है।

सदाबहार पौधे का छोटी पत्ती व कवक कुर्चिका रोग

आमतौर पर *कैथरैंथस मेडागास्कर* पेरिविंकल फूल की एक प्रजाति है, जो व्यावसायिक रूप से दुनिया के विमिन्न भागों में उगाया जाता है। भारत सहित सजावटी पौधे के अतिरिक्त इसका औषधीय महत्व भी है। इसमें औषधीय गुणों वाले अल्कलॉइड (अजमलिसिनए, सर्पेन्टाइन और रिसर्पाइन) रसायन की उपस्थिति के कारण इस पौधे का महत्व बहुत ज्यादा है। फाइटोप्लाज्मा रेाग के कारण पत्तियां अत्यन्त छोटी होकर गुच्छे के रूप में विचेजब्रूम लक्षण दर्शाती हैं। पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है व रोगी पौधों की बढ़वार रूक जाती है। फूल हरे रंग के अथवा विरूप हो जाते हैं और पौधे व फूल की प्राकृतिक सुंदरता नष्ट हो जाती है (चित्र 4.8)। सदाबहार फूल के पौधों पर यह लक्षण फाइटोप्लाज्मा के 16SrI-B उपभेद द्वारा होने की पुष्टि की गई है।

चित्र 4.8: सदाबहार में छोटी पत्ती, कवक कुर्चिका एवं तना प्रचुरोद्भवन रोग

गुड़हल

हिबिस्कस रोजा साइनेंसिस, जिसे चीन गुलाब या गुड़हल नाम से जाना जाता है, एक उष्णकटिबंधीय हिबिस्कस की प्रजाति है एवं व्यापक रूप से एक सजावटी पौधे के रूप में उगाया जाता है। यह रोग फाइटोप्लाज्मा के कारण होता है और 16SrVI-D उप–समूह का सदस्य है। कभी–कभी फूल पत्तियों के रूप में परिवर्तित हो जाता है और उसमें कलियां विकसित नहीं हो पातीं, जिसके कारण फूल नहीं

बन पाते व अत्यधिक हानि होती है। पुष्प व कलियां हरी संरचनाओं में परिवर्तित हो जाती हैं और रोगी पौधों की बढ़वार रूक जाती है (चित्र 4.9)।

चित्र 4.9: गुड़हल का पीली पत्ती, फिलोडी एवं कवक कुर्चिका रोग

चाइना एस्टर

चाइना एस्टर एक महत्वपूर्ण फूल है और भारतवर्ष में कर्नाटक, तमिल नाडु एवं महाराष्ट्र में आकर्षक कर्तित पुष्प के लिए उगाया जाता है। भारत में सर्वेक्षण के दौरान कर्नाटक में चाइना एस्टर में फूलों की विरूपकता एवं फिलोडी लक्षण पाये गये, जिसमें पुष्पों का रंग गहरे गुलाबी की जगह बिल्कुल हरा हो जाता है और उनका आकार छोटा हो जाता है। फूल विपणन योग्य नहीं रह जाते हैं जिससे फसल को अत्यधिक नुकसान पंहुचता है (चित्र 4.10)। *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ओरन्टिफोलिया (16SII-D) के फाइटोप्लाज्मा की प्रजाति द्वारा इस रोग के होने की पुष्टि की गई है।

चित्र 4.10: चाइना एस्टर पौधे में फिलोडी रोग (इनसेट में फिलोडी रोग के लक्षण)

ब्रैचाइकोम

ब्रैचाइकोम फूल एस्टीरेसी परिवार का सदस्य हैं। फाइटोप्लाज्मा संक्रमण द्वारा इस पौधे की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं एवं फूलों की संख्या कम और उनका प्राकृतिक वास्तविक रंग नहीं रह जाता है (चित्र 4.11)। पौधे की बढ़वार रूक जाती है। नई दिल्ली में ब्रैचाइकोम में यह लक्षण *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस (16SrI) समूह द्वारा होने की पहचान की गई है।

चित्र 4.11: ब्रैचाइकोम का छोटी पत्ती व पीली पत्ती रोग

पिटूनिया के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

पिटूनिया फूलों का एक सजावटी पौधा है जिसकी 35 प्रजातियां हैं तथा यह विश्व भर में उगाया जाता है। फाइटोप्लाज्मा रोग के कारण पत्तियों का रंग पीला एवं तना समतल एवं चौड़ा हो जाता है,

चित्र 4.12: स्वस्थ पौधा (क) पिटूनिया का कवक कुर्चिका (ख), समतल तना (ग) और पीली पत्ती रोग (घ, च)

और पुष्प विकसित नहीं हो पाते (चित्र 4.12)। पिटूनिया पौधे में ये लक्षण *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ऐस्टेरिस द्वारा होने की पहचान की गई है।

फ्लॉक्स

फ्लॉक्स शीत ऋतु में उगाया जाने वाला एक प्रमुख सजावटी फूलों वाला पौधा है जो पोलीमोनीएसी परिवार का सदस्य है। इस पौधे में रोग के कारण पत्तियों में व्यापक पीलापन, बौनापन व छोटे पत्ते के लक्षणों के साथ–साथ फूलों का रंग व आकार प्राकृतिक नहीं होने के कारण रोगी पौधे सजावट के उपयोग लायक नहीं रह जाते हैं (चित्र 4.13)। नई दिल्ली में *फ्लॉक्स ड्रममंडी* पौधे में डीनए *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा फोयेनेशियम (16SrIX-C) उप समूह के फाइटोप्लाज्मा प्रभेद द्वारा होने की पहचान की गई है।

चित्र 4.13: फ्लॉक्स पौधे में छोटी व पीली पत्ती एवं फूल विरुपता रोग

गुलमेंहदी (गार्डन बालसम) का समतल तना व छोटी पत्ती रोग

गुलमेंहदी एक खूबसूरत फूलों वाला एकवर्षीय पौधा है, जो बागवानी–सजावट व सुन्दरता के लिए पूरे देश में उगाया जाता है। फाइटोप्लाज्मा रोग द्वारा गुलमेंहदी पौधों के तने चौड़े हो जाते हैं, पत्तियां छोटी हो जाती एवं फूल विकसित नही हो पाते हैं (चित्र 4.14)। गुलमेंहदी पौधे का यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस व *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया द्वारा होने की पुष्टि की गई है।

चित्र 4.14: गुलमेंहदी में समतल तना रोग (क–ख) तथा छोटी पत्ती रोग (ग)

क्राउन डेजी का बौनापन रोग

क्राउन डेजी भी भारत में उगाया जाने वाला एक प्रमुख फूल का पौधा है जिसके कर्तित पुष्प बाजार में सजावट के लिए काफी लोकप्रिय हैं। फाइटोप्लाज्मा रोग के कारण पौधे छोटे व बौने हो जाते हैं और उनमें पुष्पों का आकार छोटा एवं संख्या काफी कम हो जाती है (चित्र 4.15)। यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस द्वारा होता है।

चित्र 4.15: क्राउन डेजी का स्वस्थ पौधा (क), बौनापन रोग (ख)

प्रसार: फूलों की प्रजातियों मे फाइटोप्लाज्मा रोग पर्णफुदक प्रजाति के कीटों एवं खरपतवारों द्वारा फैलता है।

प्रबंधन: फूलों में फाइटोप्लाज्मा जनित रोग के लक्षण की प्रांरभिक अवस्था में पहचान करना एवं उसका नियंत्रण इसके प्रबंधन में महत्वपूर्ण है। कीट वाहक का नियंत्रण भी इस रोग के संक्रमण की रोकथाम में संभावित समाधान है। एक बार जब पौधे संक्रमित हो जाते हैं, तो रोगजनक को लक्षित करना और नियंत्रण करना मुश्किल होता है क्योंकि यह रोग खरपतवार वनस्पतियों से भी फैलता है। अतः फूलों के खेतों के आस–पास समय–समय पर भ्रमण कर खरपतवार नष्ट करने से इस रोगों को फैलने से रोकने में मदद मिलती है। फूलों की फसलों में टेट्रासाइक्लिन के 60 एवं 80 पी.पी. एम. सांन्द्रता का छिड़काव कर प्रेरित लक्षणों में कमी लाई जा सकती है। किसानों और नर्सरीमैन के बीच फाइटोप्लाज्मा के बारे में जानकारी होने से रोग के प्रसार को रोकने मे मदद मिलती है। टेट्रासाइक्लिन के 60 एवं 80 पी.पी.एम. सान्द्रता का छिड़काव कर फाइटोप्लाज्मा की वृद्धि का संदमन हो जाता है। फूलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों की रोकथाम के लिए कीटनाशी रसायनों का उपयोग, पर्णफुदकों आदि के नियंत्रणार्थ एक प्रभावी प्रबंधन विधि है।

5. सब्जियों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

सब्जियां हमारे आहार का प्रमुख हिस्सा हैं। इनसे हमें आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं, जिसमें खनिज तत्व एवं विटामिन प्रमुख होते हैं। इसके अलावा, ये हमें स्वस्थ रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती हैं और ये औषधीय गुणों से भरपूर होती हैं। सब्जियों के उत्पादन में वृद्धि से देश की अर्थव्यवस्था में सुधार होता है, क्योंकि ये आय और रोजगार के अच्छे स्रोत हैं। भारत में वर्ष 2019–20 में 10.80 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में सब्जियों का उत्पादन 184.50 मिलियन टन आंका गया। इस अध्याय में सब्जियों में लगने वाले फाइटोप्लाज़्मा जनित रोगों के बारे में जो सब्जियों के उत्पादन में बड़ी बाधा साबित हो रही है, इनकी पहचान तथा सफल प्रबंधन की जानकारी के संबंध में चर्चा की गई है, जिससे सब्जी उत्पादक व कृषक बंधु समय से खेतों में इन रोगों की पहचान एवं प्रबंधन द्वारा अच्छी उपज एवं आय अर्जित कर सकें।

फाइटोप्लाज्मा जनित रोग मुख्यतः बैंगन, आलू, टमाटर, मिर्च, लौकी, गाजर, गोभी, कद्दू, करेला, साग एवं पत्ती वाली फसलों आदि को प्रभावित करता है। पौधे में मुख्यतः फल–फूल वाले भाग हरी पत्ती जैसी संरचना में परिवर्तित हो जाते हैं। सब्जी फल विकृत एवं छोटे हो जाते हैं और पौधे की ऊपरी भागों में झाड़ूनुमा संरचना (विचेज ब्रूम) लक्षण दिखते हैं जिससे सब्जियों का उत्पादन बिल्कुल शून्य हो जाता है और उत्पादक को लागत भी वापस नहीं हो पाती है। अतः इन रोगों को समय से पहचान कर इनका प्रबंधन करना ही एकमात्र विकल्प है, जिससे कृषक भाई सब्जियों का अच्छा उत्पादन कर लाभकारी आय अर्जित कर सकते हैं।

बैंगन का छोटी पत्ती रोग

बैंगन एक महत्वपूर्ण सब्जी फसल है। इसकी बांग्लादेश, पाकिस्तान, चीन, फिलीपींस, मिस्र, फ्रांस, स्पेन, इटली और भारतवर्ष के सभी प्रदेशों में व्यापक रुप से खेती की जाती है। बैंगन का फल खनिज, विटामिन, पानी में घुलनशील शर्करा और एमाइड का एक अच्छा स्रोत है। बैंगन का फल विशेष रुप से मधुमेह एवं जिगर की बिमारियों के रोगियों के लिए उपयोगी है। बैंगन पर कई बिमारियां लगती हैं, जिनमें फाइटोप्लाज्मा जनित बैंगन की छोटी पत्ती रोग सबसे महत्वपूर्ण हैं। बैंगन में फाइटोप्लाज्मा से जुड़ी बीमारियों का इतिहास 80 वर्ष से अधिक पुराना है। बैंगन की बीमारी का पहला रिकॉर्ड भारत में वर्ष 1939 में देखा गया, परंतु फाइटोप्लाज्मा रोग की पुष्टि वर्ष 1975 में हुई। इस बीमारी के कारण बैंगन की उपज में 40 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। बैंगन का यह रोग आमतौर पर फसल बोने के बाद फूल व फल बनने के समय प्रकट होता है और बाद में महामारी का रूप ले लेता है।

लक्षणः संक्रमित पौधे में प्रमुख लक्षण पौधे का बौनापन, छोटी अंतरगांठ, पत्ती के आकार मे कमी तथा फिलोडी हैं (चित्र 5.1)। प्रारंभिक संक्रमण की अवस्था में, कोई फल–फूल नहीं बनता है, और उपज में अत्यधिक गंभीर नुकसान होता है। देर से संक्रमण की स्थिति में रोगी पौधों में फल–फूल

विकृत हो जाते हैं और सिकुड़ जाते हैं। रोग के गंभीर होने की अवस्था में उपज में 100 फीसदी तक नुकसान की संभावना रहती है।

चित्र 5.1: बैंगन के पौधे पर फाइटोप्लाज्मा जनित लक्षणः विचेज ब्रूम और छोटी पत्ती (क व ख), फिलोडी (ग) और विचेज ब्रूम (घ)

रोगजनकः यह रोग प्रमुखतः *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा ट्राईफोलाई नामक फाइटोप्लाज्मा प्रभेद द्वारा होता है।

प्रसारः बैंगन का छोटी पत्ती रोग प्रकृति में पर्णफुदक कीट प्रजाति द्वारा फैलता है। वैकल्पिक मेजबान पौधों जैसे धतूरा, भांग और *पोर्टुलाका* खरपतवार में यह रोग पनपता है, और पर्णफुदक प्रजाति के कीटों द्वारा पुनः बैंगन की फसलों को प्रभावित करता है। पूरे भारत वर्ष में यह फाइटोप्लाज्मा जनित रोग के व्यापक रुप से फैले होने की सूचना है, जहां खरपतवारों का अतिव्यापी और पर्णफुदक की आबादी ज्यादा है। भारत में, यह रोग *हिशिमोनास फाइसिटिस* (चित्र 5.2) एवं *एम्पोएस्का* नामक पर्णफुदकों द्वारा फैलता है। वर्षा ऋतु के पहले कीटों की अधिक जनसंख्या होने पर बैंगन की फसलों में इस रोग के लक्षण ज्यादा पाये जाते है।

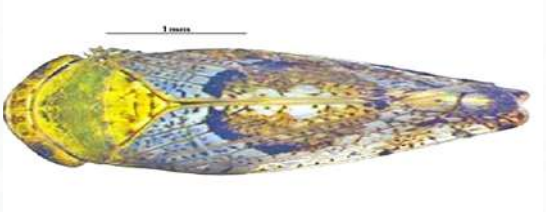

चित्र 5.2: बैंगन के फाइटोप्लाज्मा प्रभेद को प्रसारित करने वाली पर्णफुदक प्रजाति (*हिशिमोनास फाइसिटिस*)

प्रबंधनः फाइटोप्लाज्मा रोगों का कोई प्रभावी नियंत्रण उपाय सफल न होने के कारण रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चुनाव, कीट वाहक का प्रबंधन और कीटों से बचने के लिए बुवाई के समय में बदलाव करना कुछ हद तक बीमारी के प्रभाव व फैलाव को कम करने के उत्तम उपाय है। बैंगन की छोटी पत्ती रोग की गंभीरता प्रभावित पौधों की खेतों से छंटाई और कीटनाशक दवाओं के छिड़काव से भी कम की जा सकती है। कीटनाशक दवा जैसे इमेडियोक्लोप्रिड के छिड़काव से कीट नियंत्रण प्रभावी रुप से उपयोगी है। बैंगन जीनोटाइप्स की रोगरोधी गुणवत्ता और प्रतिरोधी क्षमता के बारे में रोग के खिलाफ बैंगन की खेती के आनुवंशिक स्रोत पर सीमित जानकारी उपलब्ध है। बैंगन के वन्य कुलों अर्थात *सोलेनम इंटीग्रिफोलियम* और *एस. गिलो* को इस रोग के प्रति प्रतिरोधी पाया गया है। पूसा

बैंगन तथा *सोलेनम इंटीग्रिफोलियम* और *एस. गिलो* प्रतिरोधी विकास के लिए और फील्ड प्रतिरोधी किस्म के रुप में एस. 212–1 जीनोटाइप फाइटोप्लाज्मा रोग हेतु रोगरोधी पाई गई है। कीटनाशकों के छिड़काव के साथ–साथ खरपतवार नियंत्रण बैंगन फाइटोप्लाज्मा रोग की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

टमाटर का दीर्घ कलिका रोग

लक्षणः टमाटर की फसलों में विषाणु रोगों द्वारा अत्यधिक नुकसान होता है, परन्तु विगत वर्षों में टमाटर की फसल में दीर्घ कलिका रोग एक महत्वपूर्ण रोग बन गया है और भारत के उत्तर से दक्षिण क्षेत्रों में बोई जा रही टमाटर की सभी नवीन प्रजातियों को प्रभावित कर रहा है। इस रोग की पहचान सर्वप्रथम वर्ष 2016–17 में आंध्र प्रदेश व तेलंगाना प्रदेश में की गई। इसके बाद देश के विभिन्न राज्यों में इसके लक्षण व रोग की पहचान की गई, जिससे फसल को बहुत ज्यादा क्षति होती है। इस रोग में वयस्क पौधे के ऊपरी भागों में फल–फूल वाली टहनियां केवल अपरिपक्व फूल कलिका के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं (चित्र 5.3)। रोगरोधी पौधों में फल–फूल विकसित नहीं हो पाते हैं तथा उत्पादन में ज्यादा नुकसान होता है। यदि कुछ पुष्प व फल विकसित होते भी हैं तो उनका आकार बहुत छोटा एवं संख्या कम रह जाती है जिसके कारण वे बाजार में बिक्री हेतु उपलब्ध नहीं हो पाते। रोगी पौधे छोटे हो जाते हैं, पत्तियां भी छोटी हो जाती हैं और दूर से देखने में पौधा झाड़ीनुमा प्रतीत होता है। अन्य लक्षणों में पौधों के विकास का रुकना व फल विकृति शामिल हैं।

चित्र 5.3: टमाटर के पौधे में फाइटोप्लाज्मा जनित लक्षणः फिलोडी (क और ख), दीर्घ कलिका के विभिन्न लक्षण (ग–छ)

रोगजनकः भारत में इस रोग के *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया (पीनट विचेज ब्रूम फाइटोप्लाज्मा) उपवर्ग द्वारा होने की पुष्टि की गई है।

प्रबंधनः अभी तक प्रभावी रूप से टमाटर की कोई भी प्रजाति इस रोग के प्रति रोगरोधी नहीं पाई गई है। यह रोग पर्णफुदक प्रजाति के कीटों द्वारा रोगी पौधों से स्वस्थ पौधों पर प्रसारित होता है। अतः नूवान व इमिडाक्लोप्रिड (3 मि.लि./10 लिटर पानी में) छिड़काव कर स्वस्थ खेतों में इस रोग से आंशिक बचाव किया जा सकता है। टमाटर नर्सरी व रोप को तैयार करने हेतु कीटरोधक नायलान नेट (60–100 मेश) का उपयोग करना चाहिए। फाइटोप्लाज्मा वाहक कीट (वेक्टर) को आकर्षित करने एवं उन्हें फंसाने के लिए खेत के बाहर पीले–नीले रंग के चिपचिपे बोर्ड स्थापित करना भी लाभप्रद है। फल अवस्था तक 10–12 दिनों के अंतराल पर 0.2 प्रतिशत नीम तेल, 0.1 प्रतिशत डिमेथोएट, 0.03 प्रतिशत इमिडाक्लोप्रिड कीटनाशक का अदल–बदल कर छिड़काव करने पर पर्णफुदकों की संख्या कम करने व रोग के फैलाव को रोकने में मदद मिलती है। उपलब्ध होने पर फाइटोप्लाज़्मा प्रतिरोधी उपयुक्त किस्मों को उगायें। खेत के भीतर और आसपास के क्षेत्र में खरपतवार नियंत्रण और स्वच्छता आवश्यक है। यह फाइटोप्लाज्मा और उसके कीट वाहक के प्रसार को कम करने में सहायक होता है।

आलू के द्वितियक तनों एवं जड़ों का प्रचुरोद्भवन

लक्षणः आलू की फसल में विषाणुओं द्वारा अनेक प्रमुख रोग उत्पन्न होते हैं, जिससे फसल को भारी नुकसान होता है। विषाणुओं के साथ–साथ फाइटोप्लाज्मा भी आलू की फसल में कई रोग पैदा करते हैं, जिनमें पत्ती का पीला होना, गुलाबी होना व तनों व जड़ो का प्रचुरोद्भवन प्रमुख है। इस रोग में आंख के जमाव के पश्चात आंखों से एवं कई पतले–पतले तनों का जड़ों के रूप में प्रचुरोद्भवन हो जाता है (चित्र 5.4), जिससे पौधे का विकास नहीं हो पाता और विकसित तने व जड़ें सूख जाती हैं और पौधा मर जाता है। हाल ही में आलू की प्रजाति कुफरी ख्याति एवं कुफरी सूर्या में इस रोग की पहचान उड़ीसा प्रदेश में की गई।

चित्र 5.4: आलू के पौधे का तना प्रचुरोद्भवन रोग के लक्षण (क, ख); ग्रसित आलू ट्यूबर (ग)

रोगजनकः आलू में यह रोग *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा ट्राईफोलाई (क्लोवर प्रोलीफारेशन) वर्ग द्वारा होता है।

गोभी का फ्लोरल मालफारेशन व समतल तना रोग

फूल गोभी की प्रजातियों में फूलों की जगह छोटे–छोटे पुष्प व पत्ती वाले तने लम्बे बन जाते हैं और टहनियों पर कई शाखाएं दिखाई देती हैं और उनमें छोटे–छोटे पुष्प व फल लगे रहते हैं, जो न खाने लायक रहते हैं और न ही बाजार में बेचने लायक रह जाते हैं। ऐसे फाइटोप्लाज्मा ग्रसित पौधों में पुष्प वाले तने चौड़े, चपटे व समतल हो जाते है (चित्र 5.5)। रोग ग्रस्त पौधे में लगे फल उपयोग लायक नहीं रह जाते।

चित्र 5.5: गोभी के पौधे में शूट प्रोलीफारेशन (क), विचेज ब्रूम (ख), फिलोडी और समतल तना रोग (ग एवं घ)

रोगजनक: यह रोग *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया एवं *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा साइनाडोंटिस द्वारा होता है।

लौकी का विचेज ब्रूम रोग

इस रोग के कारण रोगग्रस्त पौधों की पत्तियां नीचे की ओर मुड़ने के साथ–साथ आकार में अत्यन्त छोटी एवं पीली हो जाती हैं। पौधों की ऊपरी भाग का बढ़ाव रुक जाता है और छोटी पत्तियों एवं बेलों का गुच्छा बन जाता है। फूल या तो विकसित नहीं होते या होते भी हैं तो अक्सर विकृत, माटेल्ड (पीले–हरे), आकार में छोटे व बाजार में विक्रय के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। पौधों के शुरुआत में संक्रमित होने पर फल–फूल बिल्कुल विकसित नहीं हो पाते और पूरी फसल नष्ट हो जाती है (चित्र 5.6)।

चित्र 5.6: लौकी में छोटी पत्ती (क), और विचेज ब्रूम (ख) के लक्षण

रोगजनक: यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस समूह के सदस्य द्वारा होता है।

कद्दू का बौनापन एवं फिलोडी रोग

इस रोग के प्रारंभिक लक्षणों में पत्तियों का रंग पीला पड़ने लगता है। इसके बाद पत्तियों पर फफोले, गंभीर विकृति और उनका आकार छोटा हो जाता है, उनमें बेलें विकसित नहीं हो पातीं एवं फल पत्ती जैसी संरचना में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे ग्रसित पौधे छोटे एवं बौने रह जाते हैं जिसके कारण उनमें फूल धारण नहीं होता और फल का भी उत्पादन नगण्य हो जाता है। तनों की गाठों के बीच का हिस्सा छोटा हो जाता है (चित्र 5.7)।

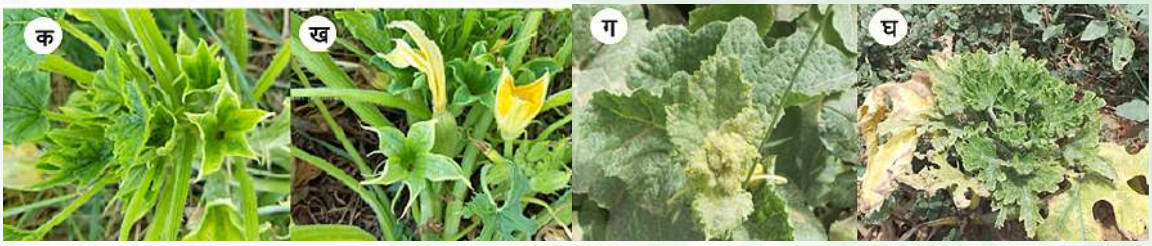

चित्र 5.7: कद्दू का फिलोडी (क, ख) व बौनापन रोग (ग, घ)

रोगजनक: यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया समूह द्वारा होता है।

लोबिया का फिलोडी एवं विचेज ब्रूम रोग

पूरे भारत में लोबिया की खेती सब्जी के रूप में की जाती है। लोबिया की फसल को विषाणुओं द्वारा अत्यधिक हानि होती है, परन्तु विगत वर्षों में दक्षिण, उत्तर–पूर्व, मध्य व उत्तर भारत में लोबिया की फसलों में पुष्पों की बंध्यता, द्वितीयक सहायक कलिकाओं का प्रचुरोदभवन (प्रोलीफरेशन), जिसके कारण कवच कुर्चिका, तने का चौड़ा होना तथा पुष्पों के हरे रंग में परवर्तित हो जाने वाले लक्षण दिखाई देते हैं (चित्र 5.8)।

चित्र 5.8: लोबिया का कलिका प्रचुरोद्भवन (क,ग,घ) तथा समतल तना रोग (ख)

रोगग्रस्त पौधे बौने एवं छोटे रह जाते हैं तथा उनमें फल–फूल विकसित नहीं हो पाते हैं जिससे फसल को अत्यधिक हानि होती है।

रोगजनक: लोबिया में फाइटोप्लाज़्मा जनित रोग *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज़्मा एस्टेरिस, *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया एवं *कैंडीटेटस* फाइटोप्लाज्मा साइनोडान्टिस द्वारा होता है।

प्रसारण: प्रकृति में लोबिया में फाइटोप्लाज्मा जनित रोग पर्णफुदक प्रजातियों द्वारा रोगी पौधे से स्वस्थ पौधे में फैलाया जाता है, जिनमें *एम्पोस्का, ओरोसियस* एवं *हिसीमोनाश* प्रजातियां प्रमुख हैं।

मिर्च का छोटी पत्ती व विचेज ब्रूम रोग

लक्षण: इस रोग के कारण पत्तियां छोटी, ऊपर की तरफ मुड़ी तथा सिकुड़ी हुई होती हैं। पौधों के ऊपरी भाग में पत्तियों के गुच्छे बन जाते हैं व उनमें फल–फूल नहीं बनते हैं। गंभीर रुप से संकमित पौधे छोटे रह जाते हैं। यदि थोड़े बहुत फल लगते भी हैं, तो वे विकृत आकार के होते हैं (चित्र 5.9)। संक्रमित पौधों की बढ़त रुक जाती है।

चित्र 5.9: मिर्च में पीली पत्ती और छोटी पत्ती रोग

रोगजनक: यह रोग फाइटोप्लाज्मा वर्ग के एस्टर येलोज एवं पीनट वीचेज ब्रूम द्वारा होता है। साथ ही ऐसे लक्षण बेगोमोवाइरस द्वारा भी होने की पहचान की गई है।

भिण्डी का छोटी पत्ती एवं कवक कुर्चिका रोग

इस रोग में भिण्डी के ग्रसित पौधे के ऊपरी हिस्से की टहनी पर पत्तियां छोटी एवं गुच्छे के रूप में विकसित हो जाती हैं। रोग की संक्रामकता के तीव्र होने पर रोगग्रस्त पौधे की पत्तियां पूरी पीली हो जाती हैं और पौधे बौने रह जाते हैं। फल अत्यंत छोटे व विकृत हो जाते हैं। कभी–कभी ग्रसित पौधों के ऊपरी भाग में पत्तियां एवं छोटे–छोटे फलों के गुच्छे के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं व उनका विकास रुक जाता है (चित्र 5.10)।

चित्र 5.10: भिण्डी का कवच कुर्चिका रोग

रोगजनक व प्रसारण: भिण्डी में ये लक्षण प्रायः भिण्डी येलो वेन मोजेक वायरस (समूहः बेगोमोवायरस) द्वारा होते हैं लेकिन विगत वर्षों में भिण्डी ग्रसित पौधों में फाइटोप्लाज्मा की भी पहचान की गई है

जो *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस वर्ग का सदस्य है। प्रकृति में यह फाइटोप्लाज़्मा जनित रोग पर्णफुदक की विभिन्न प्रजातियों द्वारा फैलता है।

गाजर का फिलोडी रोग

गाजर (*डाउकस कैरोटा*) पूरे विश्व में एक महत्वपूर्ण सब्जी फसल है। भारत में गाजर की फसल 5.32 मिलियन टन के वार्षिक उत्पादन के साथ 3.46 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में उगाई जाती है। भारत वर्ष में हरियाणा और पंजाब, गाजर उगाने वाले अग्रणी राज्य हैं, इसके बाद उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिल नाडु, कर्नाटक, असम, तेलंगाना और जम्मू–कश्मीर प्रदेश हैं। गाजर का सेवन भोजन में सलाद के रुप में किया जाता है या अन्य सब्जियों के रूप में पकाया जाता है। यह केरोटीन (विटामिन–ए) का एक प्रमुख स्रोत है।

गाजर की फसलों में पत्तियों का पीलापन एवं विचेज ब्रूम रोग के लक्षण दिखाई देते हैं जो फाइटोप्लाज्मा जनित रोग हैं, जिनमें रोगी पौधों की पत्तियों का क्लोरोफिल नष्ट होने के कारण सफेद व पीले रंग की हो जाती हैं। कभी–कभी पत्तियों का रंग गहरा बैंगनी भी हो जाता है (चित्र 5.11)।

चित्र 5.11: गाजर का बैंगनी पत्ती (क), फिलोडी (ख) एवं विरुपता (ग) रोग

रोगी पौधों में विकास रुक जाने का कारण पौधों के ऊपरी भाग में विचेज ब्रूम लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जिसमें पत्तियों का गुच्छा बन जाता है और जड़ों का विकास भी रुक जाता है (चित्र 5.11 ख)। जड़ें पतली और आकार छोटा (चित्र 5.11ग) होने के कारण वे घरेलू उपयोग व बाजार में विक्रय के लायक नहीं रह पाती।

रोगजनक: गाजर के पत्ती के क्लोरोलिस एवं विचेज ब्रूम रोग *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज़्मा आस्ट्रेलेशिया समूह द्वारा होने की पहचान की गई है।

सलाद एवं साग–सब्जी फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

सब्जी की महत्वपूर्ण फसलों के अतिरिक्त साग–सब्जी वाली फसलों को भी फाइटोप्लाज्मा जनित रोग प्रभावित करते हैं जिनमें सलाद (लेट्यूस) एवं पत्ती वाले पालक–साग (एमरैन्थस) प्रमुख हैं।

चित्र 5.12: साग का फिलोडी (क) एवं सलाद का समतल तना रोग (ख)

पालक प्रजाति के पौधे में पुष्पक्रम का तना चौड़ा होकर पौधों की बढ़वार को रोक देता है। पुष्पक्रम डंठल मोटा एवं बेलनाकार हो जाता है जिस पर छोटी–छोटी पत्तियां विकसित हो जाती हैं, जो खाने में उपयोग में नहीं आ पाती हैं (चित्र 5.12क)। भारत में यह रोग उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा व अन्य प्रदेशों में भी पाया गया है, जिसकी पहचान फाइटोप्लाज्मा के रूप में की गई है।

सलाद (*लैक्टुआ सेटाइवा*) में पत्तियों की मध्य शिरा काफी मोटी व चौड़ी होकर समतल हो जाती है और पत्तियां छोटी एवं टेढ़ी–मेढ़ी होकर गुच्छे का रूप ले लेती हैं, ये पत्तियां उपयोग व बाजार में विक्रय लायक नहीं रह जाती हैं (चित्र 5.12ख)। रोग ग्रसित पौधों की पत्तियां धीरे–धीरे पीली पड़कर व अन्ततः सूख जाती हैं।

रोगजनकः सलाद में *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ट्राइफोलाई एवं पालक में *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस फाइटोप्लाज्मा द्वारा इन रोगों की पहचान की गई है।

6. दलहनी फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का अग्रणी स्थान है। दलहनी फसलों को प्रोटीन का एक उत्तम एवं सस्ता स्रोत माना जाता है। इसलिए पूरे विश्व में इनका महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। ये दलहन उत्पादन, क्षेत्रफल एवं उपभोक्ता के दृष्टिकोण से भारत विश्व में सर्वोच्च स्थान पर है। भारतवर्ष में शाकाहारी बहुसंख्यक जनसंख्या हेतु विभिन्न दालें, प्रोटीन का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है।

प्रोटीन के साथ ही दलहनों में अन्य लाभदायक पोषक तत्वों की भी प्रचुर मात्रा में उपलब्धता है। दलहन का योगदान सर्वविदित है। दलहनी फसलों में पोषण के अतिरिक्त, इनकी जड़ों की गांठो में पाये जाने वाले शाकाणु (राइजोबियम) नाइट्रोजन को वायुमंडल से लेकर जड़ों की गांठों में स्थिर कर देते हैं। चना, मटर, राजमा, अरहर, उड़द व मूंग भारत में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण दलहनी फसलें हैं। इस अध्याय में दलहनी फसलों के कुछ महत्वपूर्ण फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों, उनके लक्षण एवं प्रबंधन के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है।

दलहनी फसलों की उत्पादन क्षमता को देखते हुये, भारत में इन फसलों की औसत उत्पादकता काफी कम है। इस कम उत्पादकता के पीछे अनेक प्रकार के जैविक व अजैविक घटक जिम्मेदार हैं, जिनके कारण प्रतिवर्ष लगभग 20–25 प्रतिशत हानि दर्ज की जाती है जिससे किसानों को ज्यादा नुकसान उठाना पड़ता है। इनमें फाइटोप्लाज्मा जनित रोग भी महत्वपूर्ण है, जो विभिन्न दलहनी फसलों की उत्पादन क्षमता को काफी कम देते हैं। भारत में फाइटोप्लाज्मा जनित कई रोगों की पहचान की गई है जो मुख्यतः चना, अरहर, मसूर एवं बाकला की फसलों को प्रभावित करते है।

चने का बौनापन एवं फिलोडी रोग

देश के सभी राज्यों में जहां चने की खेती की जाती है यह रोग प्रमुखता से विगत वर्षो में पैदावार में 20 प्रतिशत तक क्षति पहुंचाते देखा गया है। इस रोग से संक्रमित पौधे बौने हो जाते है, पर्णक छोटी एवं उनका बाहरी शिरा गाढ़े लाल रंग का (चित्र 6.1ख) या पूरी पर्णक ही पीली (चित्र 6.1घ) हो जाती है। यह रोग देसी एवं काबुली चने की प्रजातियों दोनों में पाया जाता है। फिलोडी रोग में पौधों में फूल हरी पत्तियों की संरचनाओं में परिवर्तित हो जाता है (चित्र 6.1क) व फल नही बन पाते, जिससे उत्पादकता में 100 प्रतिशत तक नुकसान होता है। रोगी पौधे के पोषवाहक ऊतक (फ्लोएम) का रंग भूरा हो जाता है, जिसे क्षैतिज या अनुलम्ब चीरा लगाकर देखा जा सकता है। अल्पवयस्क अथवा प्रारंम्भिक अवस्था में संक्रमित पौधे की बढ़वार रूक जाती है और इन पौधों में फूल व फल विकसित नहीं होता और पूरा खेत सूख जाता है (चित्र 6.1ग)।

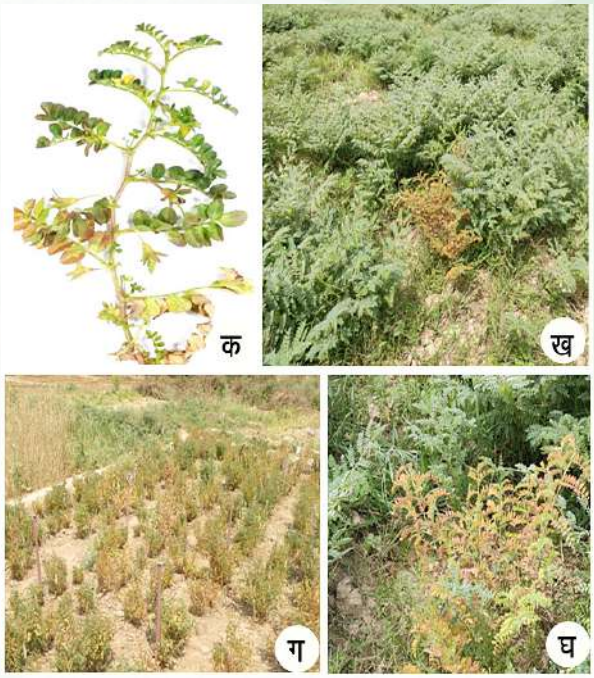

चित्र 6.1: चने का फिलोडी (क), लाल पत्ती (ख,घ), सूखा व बौनापन रोग (ग)

रोगजनक: यह रोग फाइटोप्लाज्मा वर्ग के *"कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस" व *"कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा आरेंटीफोलिया" प्रभेद से होता है। कई रोगी पौधों में फाइटोप्लाज्मा के साथ "चिकपी क्लोरोटिक ड्राफ विषाणु" एवं कुकम्बर मौजेक विषाणु भी इस लक्षण के लिए उतरदायी पाये गये हैं।

समेकित प्रबन्धन: अभी तक चने की कोई भी प्रजाति इस रोग से रोग रोधी नहीं पायी गई है। चने का फिलोडी रोग पर्णफुदक प्रजाति एवं चने के खेतों में उगे खर–पतवार द्वारा प्रकृति में फैलता है। खेतों में रोग के लक्षण दिखने पर कीटनाशी का पर्णीय छिड़काव करके रोग के फैलाव को रोका जा सकती हैं । रोगी पौधो को जड़ से उखाड़कर जला दें एवं गड्ढा खोदकर दबा दें। विभिन्न प्रदेशों में मध्यम रोगरोधी प्रजातियों का उपयोग कर रोग की विभीषता से बचा जा सकता है।

अरहर का विचेज ब्रूम एवं फिलोडी रोग

अरहर खरीफ में उगाई जाने वाली भारतवर्ष की एक प्रमुख फसल है और पूरे भारत में प्रोटीन के स्रोत के रूप में घर–घर में दाल के रूप में उपयोग में लाया जाता है। अरहर की फसल में दाल के रूप में फफूंदी (अंगमारी, विगलन, फुसला) एवं विषाणु (स्टेरिलिटी मौजेक) रोगों के अतिरिक्त फाइटोप्लाज्मा जनित विचेजब्रूम एक महत्वपूर्ण रोग है। इसका प्रकोप दक्षिण एवं उत्तर भारत में सामान्यतः अधिक देखा गया है।

लक्षण: इस रोग के प्रथम लक्षण पौधे के ऊपरी भाग में दिखाई देते हैं, जिनमें पत्तियों को छोटा होना एवं पौधे के समस्त विकसित हो रहे अग्रणी एवं ऊपरी भाग झाड़ूनुमा संरचना (विचेज ब्रूम) में परिवर्तित

हो जाते हैं (चित्र 6.2), जिनमें फल–फूल नहीं बन पाते और संक्रमित पौधे छोटे व बौने हो जाते हैं। कभी–कभी पौधों के ऊपरी शिरे धागेनुमा संरचना में परिवर्तित हो जातें हैं, जिससे पूरे पौधे में पुष्प और बालियों के न बन पाने के कारण काफी हानि होती हैं।

चित्र 6.2: अरहर का छोटी पत्ती (क), बौनापन (ख) एवं विचेज ब्रूम रोग (ग)

रोगजनक: यह रोग *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस एवं पीनट विचेज ब्रूम नामक फाइटोप्लाज्मा द्वारा होता है।

रोकथाम: उन क्षेत्रों में जहां रोग का संक्रमण अधिक होता हो, पर्णफुदकों की पहचान कर कीटनाशक दवाओं इमिडाक्लोप्रिड एवं नुवान का छिड़काव करके प्रसार को रोकने में उत्तम पाया गया है। अरहर की रोग अवरोधी प्रजातियां उगाना भी रोग को रोकने में सहायक है। रोग ग्रस्त पौधे को खेत से निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। यदि समय से किसान इस रोग के लक्षण कों पहचान कर इसे नष्ट कर दें तो काफी हद तक इसका प्रसार खेत के अन्य भाग एवं अगल–बगल के खेतों में कीटों द्वारा फैलने से रोका जा सकता है।

बाकला का कली प्रचुरोद्भवन व छोटी पत्ती रोग

इस रोग में बाकला की फसलों में पुष्पों की बांध्यता, द्वितीयक सहायक कलिकाओं का प्रचुरोद्भवन (प्रोलीफरेशन) के लक्षण परिलक्षित होते हैं, जिसके कारण कुर्चिका जैसी संरचना उत्पन्न होती है। पौधे की बढ़वार रुक जाती है। रोगी की प्रत्येक गांठ पर छोटी–छोटी पत्तियों के गुच्छे बन जाते हैं व उनमें फूल एवं फली नहीं बन पाते (चित्र 6.3), जिससे रोगी फसलों में फलियों का उत्पादन नहीं हो पाता। ऐसे ग्रसित पौधे बाद में पीले होकर सूख जाते हैं।

चित्र 6.3: बाकला का कली प्रचुरोद्भवन एवं छोटी पत्ती रोग

रोगजनकः भारत में इस रोग की पहचान *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया द्वारा की गई, जो प्रकृति में पर्णफुदक प्रजातियों द्वारा रोगी पौधों से स्वस्थ पौधे में फैलता है।

प्रबंधनः रोगरोधी प्रजाति का चयन एवं कीटनाशक रसायनों का प्रयोग रोग के आपतन को कम कर सकते हैं।

मसूर का विचेज ब्रूम रोग

इस रोग के कारण पूरा पौधा एक गुच्छेनुमा संरचना में परिवर्तित हो जाता है और पत्तियां छोटी हो जाती हैं। उनमें फूल व फली का विकास नहीं हो पाता और फसल को अत्यधिक नुकसान पहुंचता है (चित्र 6.4)।

चित्र 6.4: मसूर का छोटी पत्ती व विचेज ब्रूम रोग

रोगजनकः यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया द्वारा होता है।

प्रबंधनः रोगी पौधों को खेतों से निकालकर नष्ट कर देना और रोग प्रतिरोधी जातियों का उपयोग करना रोग प्रबंधन में सहायक है।

7. तिलहनी फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

सरसों का पर्णभित्ती (फिलोडी) एवं तना विकृति रोग

सरसों वर्गीय फसलें भारतवर्ष में तिलहनी फसलों के राष्ट्रीय उत्पाद का 5 प्रतिशत एवं कृषि उत्पाद का 10 प्रतिशत हिस्सा साझा करती हैं। देश में इनका क्षेत्रफल 65 लाख है. है। सरसों वर्ग की कई फसलें जैसे राई, पीली व भूरी सरसों, तोरिया एवं अफ्रीकन सरसों प्रमुख हैं। कुल क्षेत्रफल में हमारा देश विश्व में पहले स्थान पर है लेकिन प्रति हेक्टर उत्पादकता में विश्व उत्पादन के औसत से पीछे है। इन फसलों की खेती अधिकतर राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश व गुजरात में होती है। उत्पादन की कमी का एक प्रमुख कारण रोगों का प्रकोप है, जिसमें फाइटोप्लाज्मा जनित रोग की भी पहचान की गई है।

सरसों वर्ग की कई प्रजातियों जैसे राई एवं भूरीं सरसों में फाइटोप्लाज्मा रोग ग्रसित फसल में फूल आने पर इस रोग के लक्षण अधिक स्पष्ट दिखाई देते है। पूर्ण पुष्पांग इस रोग से प्रभावित होकर पत्तीनुमा हरी संरचना में परिवर्तित हो जाते हैं। रोगग्रस्त पौधों में अनेक शाखाएं निकल आती हैं (चित्र 7.1) और झाड़ीनुमा संरचना बन जाती है। फलियां या तो बनती ही नहीं हैं या छोटे आकार की अण्डाकार हरी तथा खाली फलीदार की संरचना जैसे दिखती है (चित्र 7.2)। तोरिया प्रजाति में तने का आकार विकृत होकर टेढ़ा–मेढ़ा हो जाता है और फलियों में दाने नहीं बन पाते हैं और फसल को भारी नुकसान होता है।

चित्र 7.1: सरसों का चौड़ा तना एवं विरुपता रोग

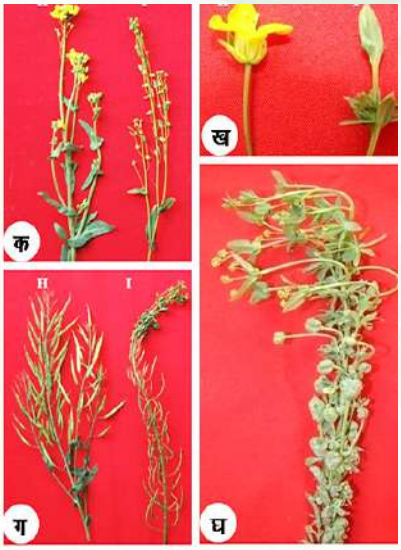

चित्र 7.2: तोरिया का फिलोडी रोग

चित्र 7.3: तोरिया फिलोडी को प्रसारित करने वाली पादपफुदक प्रजाति, *लाओडेलपपैक्स स्ट्रिएटेलस*

रोगजनक: भारत में सरसों में फिलोडी रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा द्वारा एवं तना विकृति रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस द्वारा होने की पहचान की गई है।

प्रबंधन: यह रोग पर्णफुदकों की प्रजाति *लाओडेलपैक्स स्ट्रिएटेलस* द्वारा फैलता है (चित्र 7.3)। इस कीट के प्रबन्धन के लिए डाईमिथोएट या मेटासिस्टाक्स (0.1 प्रतिशत) घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करने से रोग के आपतन को कम करने में सहायता मिलती है। खेत में खरपतवार जो इस फाइटोप्लाज्मा के प्राथमिक आल्टरनेटिव होस्ट हैं, उन्हें उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। इस रोग से ग्रसित क्षेत्रों में फसल की पछेती बिजाई करने पर रोग का आपतन कम होता है। रोग–रोधी प्रजतियां बोने से रोग को रोका जा सकता है।

तिल का फिलोडी रोग

तिल एक महत्वपूर्ण तिलहन फसल है, जो 3,000 से अधिक वर्षो से एशिया और अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय और उप–क्षेत्रों में बोई जा रही है। इसकी दुनियाभर में 6.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में खेती की जाती है और लगभग 3 मिलियन टन से अधिक बीज का उत्पादन होता है। सूडान,

म्यांमार और चीन के साथ भारत तिल का एक प्रमुख उत्पादनकर्ता देश है। विश्व उत्पादन का 68 प्रतिशत तिल उत्पादन भारत में होता है। तिल का बीज प्रोटीन (20 प्रतिशत) का एक समृद्व स्रोत है। साथ ही इसमें खाद्य तेल (50 प्रतिशत) और संतृप्त फैटी एसिड की उच्च मात्रा (47 प्रतिशत ओलिक एसिड और 39 प्रतिशत लिनोलिनिक एसिड) होती है। विभिन्न रोगों में फिलोडी तिल फसल की एक विध्वंसक बीमारी है। यह रोग फाइटोप्लाज्मा द्वारा जनित होता है जो तिल की खेती को प्रभावित करने वाला प्रमुख रोग है एवं यह 100 वर्ष पुराना रोग है। तिल की लगभग सभी किस्में इस बीमारी के प्रति अतिसंवेदनशील होती हैं और गंभीर आर्थिक नुकसान के लिए जिम्मेदार हैं।

लक्षणः इस रोग के प्रमुख लक्षण फिलोडी और पौधे की झाड़ूनुमा रचना का विकास है जो उपज को पूरी तरह नष्ट कर देता है (चित्र 7.4 घ व ज)। फिलोडी बीमारी से प्रभावित पौधे की पत्तियां छोटी हो जाती हैं तथा पुष्पा हरे पत्तों जैसी संरचनाओं में परिवर्तित हो जाते हैं (7.4 क व ग)। फिलोडी पुष्पा की पत्तीदार संरचनाओं का उत्पादन करने वाला एक रोग है। फूल का रंग हरे पत्ते के रंग में बदल जाता है (चित्र 7.4 ख)। साथ ही झाड़ुनुमा रचना (विचेज ब्रूम), तने का सपाट होना (चित्र 7.4 घ), और बीज कैप्सूल का टूटना व फट जाना (चित्र 7.4 छ) इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। ग्रसित पौधों में कैप्सूल व बीज कम बनते हैं और उत्पादन काफी कम हो जाता है। इस रोग के परिणामस्वरुप 34 प्रतिशत तक हानि और अत्यधिक प्रभाव की अवस्था मे 100 प्रतिशत नुकसान होने की संभावना बढ़ जाती है।

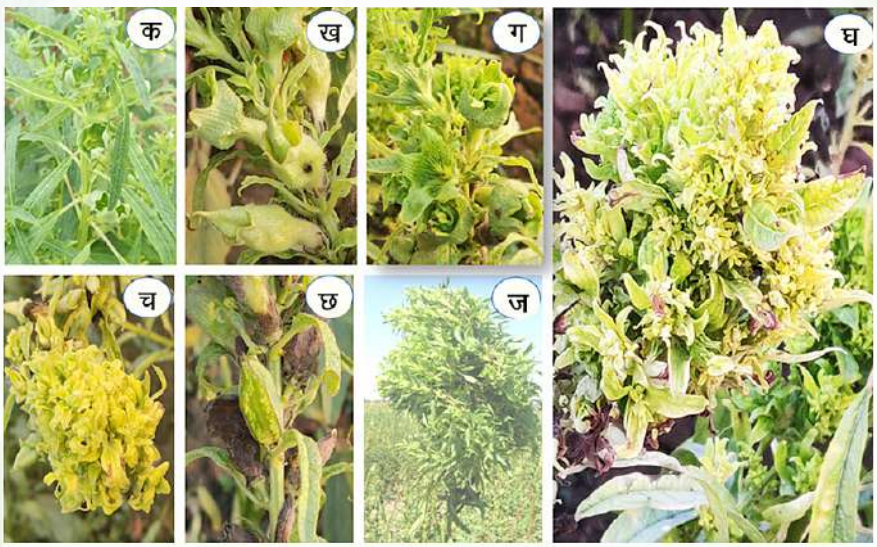

चित्र 7.4: तिल फिलोडी रोग के विभिन्न लक्षणः फिलोडी (क,ख,ग); विचेज ब्रूम (घ, च,ज,); कैप्सूल का टूटना (छ)

रोगजनकः भारत में इस रोग की पहचान *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस तथा *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया ग्रुप से होने की पुष्टि की गई है।

प्रसारः यह रोग प्रकृति मे अलग–अलग पर्णफुदक प्रजातियों द्वारा फैलता है, इसके अलावा कई, खरपतवार प्रजातियां तिल फिलोडी से जुड़े फाइटोप्लाज्मा की मेजबान स्रोत हैं। भारतवर्ष में फिलोडी

रोग को फैलाने वाला प्रमुख कीट *आरेसियश एल्बिसिंकटस* (चित्र 7.5), *हिशिमोनास फाइसिटिस* एवं *एम्पोएस्का* प्रजाति के हैं।

चित्र 7.5: तिल फिलोडी रोग को प्रसारित करने वाली पर्णफुदक प्रजाति (*ओरोसियस एल्बिसिंकटस*)

प्रबंधनः अभी तक इस रोग के प्रभावी नियंत्रण की कोई विधि विकसित नहीं की जा सकी है और इस रोग प्रति तिल का कोई प्रतिरोधी जीनोटाईप भी विकसित नहीं हो सकी है। तिल की फिलोडी प्रतिरोधी प्रजातियों का उपयोग करके इस रोग को प्रबंधित करने का प्रयास जारी है। कीटनाशको का उपयोग करके लीफहॉपर वाहक के खिलाफ नियंत्रण के उपरांत ही इस रोग के आपतन को कम करनें में मदद मिलती है। कुछ सांस्कृतिक तरीके, विशेष रुप से फसल चक्र प्रबंधन, बुवाई का समय, कीटों की उपस्थिति का संज्ञान फिलोडी रोग की गंभीरता को प्रभावित करती हैं। रासायनिक उपचार द्वारा कीटवाहक को नियंत्रित कर रोग के आपतन कम कर सकते हैं लेकिन बीमारी का पूर्ण उन्मूलन संभव नहीं है। सेविथिया (कार्बेरिल 40 प्रतिशत), राथियोनमिथाइल मोनोक्राटोफोस 0.025 प्रतिशत के 1.5 किग्रा/हेक्टेयर) और मिथाइल–ओ–डेमेटन (0.025 प्रतिशत) का उपयोग कीट वाहक के खिलाफ संरक्षित फसल की वृद्वि की महत्वपूर्ण रणनीतियों में से एक है। टिकाऊ प्रतिरोधन क्षमता के साथ खेती का विकास तिल फिलोडी रोग का अच्छा प्रबंधन स्रोत है। तिल के वन्य कुलों के जीनों का उपयोग करके भी रोगरोधी प्रजातियों का विकास भविष्य मे अच्छा विकल्प होगा, जिस पर षोध कार्य एवं अध्ययन जारी है।

मूंगफली का छोटी पत्ती एवं तने का प्रचुरोद्भवन

फाइटोप्लाज्मा रोग के लक्षण बुवाई के 30 से 40 दिनों के बाद दिखाई देते हैं। प्रारंभ में पौधे के गांठ पर कई छोटी–छोटी पत्तियां विकसित होकर पौधे की वृद्धि को रोक देते हैं। ऐसे पौधे बौने हो जाते हैं और उनमें फूलों एवं फलियों की संख्या काफी कम हो जाती है। फलियों में बीज नहीं बन पाते और पौधे को उखाड़ने पर उनकी स्थिति नकारात्मक भूअनुवर्तन (negative geotropism) की प्रवृत्ति पायी जाती हैं। पूरा रोगी पौधा गुच्छे के रूप में परिवर्तित हो जाता है (चित्र 7.6)।

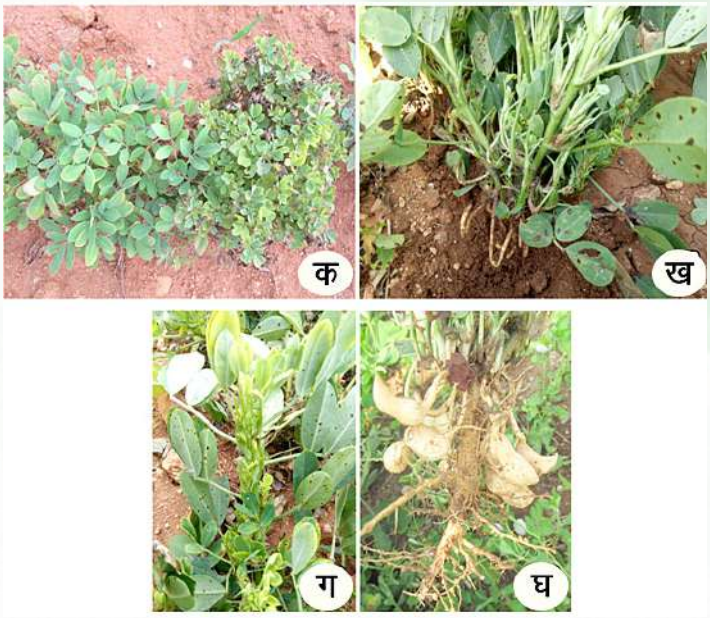

चित्र 7.6: मूंगफली में छोटी पत्ती (क), प्रचुरोद्भवन (ख, ग) एवं फली विरुपता रोग(घ)

रोगजनक: भारत में यह रोग आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले के कादरी क्षेत्र में मूंगफली की सबसे अधिक उत्पादन देने वाली प्रजाति के–6 में *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया के प्रभेद के रूप में पहचान की गई है।

प्रबंधन: रोगी पौधों को पहचान कर नष्ट कर देना चाहिए। खेतों में एवं आस–पास के खरपतवार को साफ करते रहना चाहिए, जिससे कि रोग को फैलाने वाले कीटों के आपतन को रोका जा सके। रोग–रोधी प्रजाति का चुनाव प्रबंधन का सर्वोत्तम विकल्प है।

सोयाबीन का पीली पत्ती एवं विचेज ब्रूम रोग

सोयाबीन विश्व की महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है और भारतवर्ष में वर्तमान में लगभग 130 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में इसकी खेती की जाती है, जिससे 158 लाख टन सोयाबीन का उत्पादन प्राप्त होता है। विश्व स्तर पर भारतवर्ष में सोयाबीन उत्पादकता 1008 कि.ग्रा./है. है, जो विश्व की औसत उत्पादकता (2310 कि.ग्रा./है.) से काफी कम है। भारत विश्व के कुल उत्पादन में 4% योगदान करता है। भारत में सोयाबीन उत्पादन के क्षेत्र में मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र अग्रणी राज्य हैं, जो कुल उत्पादन का लगभग 90% योगदान करते हैं।

सोयाबीन कम कीमत में उपलब्ध उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन का प्राकृतिक स्रोत हैं। इसमें लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन एवं 18–20 प्रतिशत वसा की मात्रा होती है और साथ ही प्रचुर मात्रा में लवण एवं विटामिन आदि भी मौजूद हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण विगत वर्षों में असमय वर्षा, तापमान में वृद्धि एवं वर्षा समय से न होने के कारण सोयाबीन फसल में विभिन्न रोग व कीट व्याधियों का प्रकोप बढ़ रहा है, जिसके फलस्वरूप उत्पादन में भारी कमी आ रही है।

सोयाबीन में कालर सड़न रोग, पीला मोजैक रोग और गेरुआ रोग प्रमुख हैं। परन्तु हाल के वर्षों में सोयाबीन की फसल पर फाइटोप्लाज़्मा जनित रोग की पहचान की गई है, जिसमें रोगी पौधों की पत्तियां छोटी व पीली पड़ जाती हैं। पौधे की बढ़वार रुक जाती है एवं पौधे कमजोर होकर मर जाते हैं तथा पूरा खेत खाली हो जाता है (चित्र 7.7)।

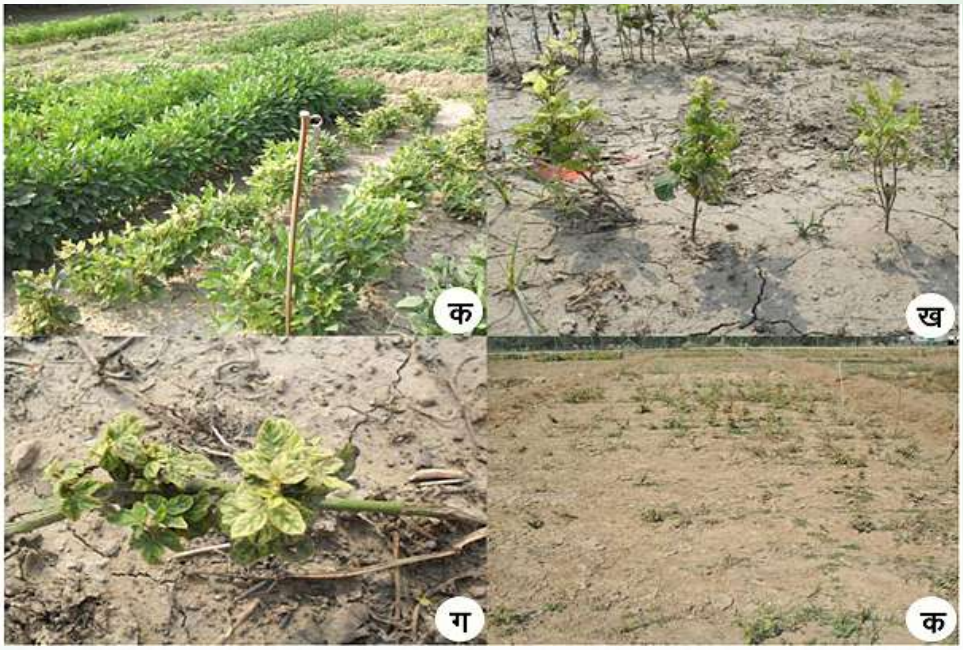

चित्र 7.7: सोयाबीन के खेतों में फाइटोप्लाज्मा जनित लक्षण

रोगजनक एवं प्रसार : यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज़्मा एस्टेरिस एवं *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया द्वारा होता है जो *एम्पोएस्का* एवं *एक्जीटिएनस* नामक पर्णफुदक प्रजातियों द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे पर फैलता है।

प्रबंधन: यह फाइटोप्लाज्मा खरपतवारों पर अपना जीवन–यापन करते हैं तथा पर्णफुदकों द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे पर फैलता है, इसलिए खरपतवार नष्ट करना अति आवश्यक है। पर्णफुदक नियंत्रण के लिए थोयामेथोक्जाम दवा का 100 ग्रा./है. की दर से बुआई के 30 और 45 दिन बाद छिड़काव करना चाहिए। रोग प्रतिरोधी किस्मों की खेती करना भी रोग के नियंत्रण में लाभप्रद है।

अलसी का फिलोडी समतल तना रोग

उत्तर–पूर्व असम में अलसी में चौड़ा समतल तना रोग की *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस द्वारा होने की पुष्टि की गई है। इस रोग से ग्रसित रोगी पौधे का तना चौड़ा हो जाता है और उनमें पुष्प व फली का उचित मात्रा में विकास नहीं हो पाता (चित्र 7.8)। पौधे छोटे रह जाते हैं और बीज उत्पादन में काफी नुकसान होता है।

चित्र 7.8: अलसी का समतल तना व चौड़ा रोग

रोगजनक: अलसी फसल में यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस एवं *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा साइनोडान्टिस प्रभेदों द्वारा होने की पुष्टि की गई है।

प्रबंधन: रोगरोधी जातियों का चयन करें व रोगी लक्षण वाले पौधों को खेतों से निकालकर नष्ट करना चाहिए।

8. नकदी/व्यावसायिक फसलों के फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

गन्ने का सफेद पत्ती व घासीय प्ररोह रोग

गन्ना भारत की एक प्रमुख नकदी फसल है जिसकी व्यापक रुप से भारत के विभिन्न राज्यों में खेती की जाती है। भारतवर्ष में गन्ना शर्करा उत्पादन का मुख्य स्रोत है। भारत में गन्ने की फसलों को कई प्रमुख रोग प्रभावित करते हैं जिनमें घासीय प्ररोह (ग्रासी शूट) रोग है जो फाइटोप्लाज्मा द्वारा होता है। यह रोग प्रायः एल्बिनो, ग्रासी शूट, विवर्ण रोग तथा घासीय प्ररोह आदि नामों से भी जाना जाता है। भारत मे सर्वप्रथम यह रोग महाराष्ट्र में वर्ष 1955 में देखा गया। विश्व में यह रोग थाईलैण्ड, श्रीलंका, बांग्लादेश, वियतनाम, चीन एवं पाकिस्तान में गन्ने की फसल को प्रभावित करता है। बावग फसलों की अपेक्षा इस रोग का आपतन पेड़ी फसलों को ज्यादा नुकसान पहुंचाता है।

भारतवर्ष में तमिल नाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार, मध्य एवं पश्चिम उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा के विभिन्न चीनी मिल परिक्षेत्रों में फाइटोप्लाज्मा जनित घासीय प्ररोह रोग का आपतन अधिक देखा गया है जिसके कारण समय से प्रभावी नियंत्रण न होने की स्थिति में मिल योग्य गन्नों की संख्या में काफी कमी आ जाती है एवं उपज अत्यधिक प्रभावित होती है।

लक्षणः बुवाई के कुछ दिनों के बाद ही इस रोग के लक्षण परिलक्षित होने लगते है। विषेष रुप से इस रोग का आपतन वर्षाकाल में अधिक होता है। रोगी पौधे के अगोले की पत्तियों में हरापन बिल्कुल समाप्त हो जाता है जिससे पत्तियों का रंग दूधिया हो जाता है और नीचे की पुरानी पत्तियों में मध्य शिरा के समानान्तर दूधिया रंग की धारियॉ पड़ जाती हैं (चित्र 8.1 क)। रोग ग्रसित पौधों में अनेक पतले–2 किल्ले निकलते हैं। रोग ग्रसित पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा गन्ने के तने बौने व पतले हो जाते हं जिसके कारण रोग ग्रसित पौधे (झाड़ीनुमा) घास की तरह दिखाई देते हैं (चित्र 8.1 ख)। रोगी पौधों में बीमारी की भीषणता के कारण मात्र 1 या 2 गन्ने के तने ही बन पाते हैं। रोगी गन्नों में आंखें अपरिपक्व अवस्था में ही अंकुरित हो जाती हैं तथा उनमें से सफेद पत्तियॉ निकलती हैं। रोगी पौधों में जड़ें अविकसित रह जाती हैं जिसके फलस्वरुप किल्ले सूख जाते हैं तथा खेत खाली हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस रोग के कारण फसल में मिल योग्य गन्ने कम तथा पतले बनते हैं जिससे उपज में खासी गिरावट आ जाती है। इस रोग से ग्रसित गन्नों में सुक्रोज की मात्रा कम होती है। साथ ही रिड्यूसिंग शुगर बढ़ जाती है जिससे सुक्रोज के क्रिस्टल नहीं बनते हैं। अत्यधिक आपतन की स्थिति में प्रायः 30–40 प्रतिशत तक जमाव व उत्पादकता प्रभावित होती है।

रोगजनकः गन्ने का ग्रासी शूट या सफेद पत्ती रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा सैकेराई फाइटोप्लाज्मा प्रजाति (16 Sr XI) के प्रभेद द्वारा गन्ने की फसलों को प्रभावित करता है।

प्रसारः भारत में यह रोग *डेलटासिफेलिस वलगेरिस* नामक भुनगा (प्लांट हापर) एवं *एक्सिनियेटस साइटिस, पाईरिला परप्यूसिला* नामक पर्णफुदकों की प्रजाति द्वारा फैलता है जो इस रोग के प्रमुख वाहक हैं। गन्ने का यह रोग रोगी गन्नों को बीज के रुप में प्रयोग करने से भी फैलता है।

चित्र 8.1: गन्ने की फसल में सफेद पत्ती रोग का आपतन (क), तना प्रचुररोद्भवन (ख) एवं सफेद पत्ती रोग (ग)

चित्र 8.2: गन्ने का घासीय प्ररोह रोग

प्रबंधनः रोग रोधी जातियों को बोना, इसके रोकथाम का उचित माध्यम है। गन्ने के टुकडों को 52^0 से. पर गर्म जल उपचारित करने व 0.1 प्रतिशत टेट्रासाइक्लिन का बोने से पूर्व बीज उपचार करने पर रोग का आपतन काफी कम हो जाता है। यह रोग लीफहाफर एवं प्लाण्ट हाफर द्वारा ग्रसित खेतों में फैलता है। समय–समय पर रोगी गन्ने के थानों को नष्ट कर देना एवं उन्हें मिट्टी में ढक देना भी रोग प्रबंधन में कारगर उपाय है। रोगी गन्नों को बीज के रुप में उपयोग न करना एवं पेड़ी फसल न लेकर फसल चक्र अपनाना भी इस रोग के रोकथाम का उचित माध्यम है।

गन्नें की फसलों में फाइटोप्लाज्मा रोगों से मुक्ति के लिए, संक्रमित गन्ने के टुकड़ों को 4 घंटे तक 54^0 से. पर गर्म हवा अथवा 2 घंटे तक 50^0 से. तापमान पर गर्म जल के साथ उपचारित करने की संस्तुति की गई है।

चंदन वृक्ष का स्पाइक रोग

चंदन (*संतालम एल्बम*), एक अत्यधिक मूल्यवान वृक्ष की प्रजाति है, जो सुगंधित लकड़ी, तेल, पारंपरिक कॉस्मेटिक और इत्र उद्योग हेतु अत्यधिक लोकप्रिय है। परन्तु सैण्डल स्पाइक रोग, जो फाइटोप्लाज्मा जनित है, के कारण बड़े पैमाने पर दक्षिण भारत के कर्नाटक, केरल एवं तमिलनाडु प्रदेशों में इसके प्राकृतिक स्रोत समाप्त होते जा रहे हैं। चंदन वृक्ष का स्पाइक रोग एक विनाशकारी रोग है, जो चंदन की लकड़ी की गुणवत्ता और सुगंधित तेल की गुणवत्ता को अत्यधिक प्रभावित करता है। यह रोग एक सदी से भी अधिक पुराना है। सर्वप्रथम इस रोग की पहचान कर्नाटक के कूर्ग में 1899 में की गई और इसके परिणामस्वरुप 1903–1916 के दौरान मैसूर और कूर्ग क्षेत्रों में एक लाख से अधिक चन्दन वृक्ष नष्ट कर दिये गये।

रोगजनकः स्पाइक रोग के *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस द्वारा होने की पुष्टि की गई है।

लक्षणः स्पाइक रोग के प्रमुख लक्षण पत्ती के आकार में कमी, छोटे इंटर्नोड्स और पत्तिया की टहनियों पर झाड़ीनुमा रचना बन जाती है (चित्र 8.3)। रोगी पौधे आमतौर पर 1 से 2 वर्ष के भीतर ही मर जाते हैं। स्पाइक रोग के कारण, भारत में केरल और कर्नाटक राज्यों के जंगलों में चंदन वृक्षों की आबादी लगभग समाप्त हो रही है और चंदन का उत्पादन लगभग 20 प्रतिशत की वार्षिक दर से घट रहा है।

चित्र 8.3: चंदन का स्पाइक रोग

प्रसारः अभी तक प्रमाणित रूप से स्पाइक रोग को प्रकृति में संक्रमित करने वाले कीट या खरपतवार की पहचान नहीं की गई है।

प्रबंधनः चन्दन वृक्षों पर लगने वाले स्पाइक रोग के प्रबंधन हेतु कोई कारगर विधि उपलब्ध नहीं है। फिर भी चन्दन वृक्षों वाले क्षेत्रों में एवं आस–पास यदि समय–समय पर कीट नियंत्रक रसायनों का

प्रयोग करने से रोग के आपतन में निश्चित कमी आएगी।

बांस प्रजातियों का विचेज ब्रूम एवं ह्रासमान रोग

बांस एक महत्वपूर्ण वन उत्पाद है, जिसकी भारतवर्ष में पिछले कई वर्षो से सफलतापूर्वक खेती की जा रही है। बांस का प्रयोग इमारती लकड़ी, सीढ़ी बनाने, फर्नीचर, अस्थायी पुल निर्माण एवं कागज बनाने में किया जाता है। कहीं–कहीं इसके नए प्ररोह को खाने व अचार–मुरब्बा बनाने में भी उपयोग करते है। बांस की प्रजातियों में भारतवर्ष में *डैंड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस* सबसे प्रमुख प्रजाति है, बाजार में इसकी बहुत मांग है। बांस की विभिन्न प्रजातियां भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों जैसे अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा एवं पश्चिम बंगाल में पायी जाती हैं। बांस आजकल एक नकदी फसल के रुप में किसानों की पसंद बनता जा रहा है जिससे किसानों को अच्छा आर्थिक लाभ प्राप्त हो रहा है। चूंकि बांस में बीज लम्बे समय के अन्तराल पर प्राप्त होता है, इसलिए इसका कायिक प्रवर्धन प्रकन्द द्वारा किया जाता है। बांस में ज्यादा रोग या कीटों का प्रकोप नहीं होता है। कवक व कुछ विषाणुओं द्वारा होने वाले रोगों के अतिरिक्त बांस में फाइटोप्लाज्मा द्वारा कुछ नये रोगों की पहचान अभी हाल ही में देश के कई राज्यों में की गई है जिससे बांस का उत्पादन काफी प्रभावित हो रहा है।

लक्षणः वर्ष 2019–20 के दौरान भारत के छह राज्यों क्रमशः कर्नाटक, सिक्किम, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और दिल्ली में बांस की ग्यारह विभिन्न प्रजातियों में फाइटोप्लाज्मा जनित लक्षणों जैसे विचेज ब्रूम (चित्र 8.4 क), छोटी पत्ती (चित्र 8.4ख), तनों का सूखना (चित्र 8.4 ख, ग और घ) एवं मर जाना (चित्र 8.4 घ व च) की पहचान की गई। इनमें से बांस की प्रजातियों को अधिक प्रभावित करने वाला प्रमुख लक्षण विचेज ब्रूम है, जिसमें बांस की टहनियों के ऊपरी सिरे एक गुच्छे के रुप परिवर्तित हो जाते हैं जिनमें छोटी–छोटी पत्तियां बन जाती है, जो बाद में पीली पड़कर सूख जाती हैं (चित्र 8.4 छ व ज)।

चित्र 8.4: बांस प्रजातियों में विचेज ब्रूम एवं डेक्लाइनिंग के लक्षणः *डैंड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस* प्रजाति में छोटी पत्ती व विचेज ब्रूम रोग (क); *डैंड्रोकैलेमस स्टाइकसाइ* प्रजाति में विचेज ब्रूम के लक्षण (ख, ग); *बैम्बूसा बैम्बास* प्रजाति में बांस का सूखना व मर जाना (घ); *डैंड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस* प्रजाति में विचेज ब्रूम रोग (च); *बैम्बूसा न्यूटेन्स* प्रजाति में विचेज ब्रूम व छोटी पत्ती रोग (छ, ज)

रोगजनकः बांस के फाइटोप्लाज्मा जनित लक्षणों के नमूनों में बांस की छह विभिन्न प्रजातियों में 16 एसआर.डीएनए दृश्यों के अनुक्रम द्वारा *कैंडिडेटस* फाइटोप्लाज्मा एस्टेरिस, *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ऑस्ट्रेलेशिया और *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा साइनोडोंटिस से संबंधित फाइटोप्लाज्मा उपभेद के साथ जुड़े होने की पुष्टि की गई है।

प्रसारः बांस प्रजातियों के अतिरिक्त बांस में पहचाने गये फाइटोप्लाज्मा उपभेद को खरपतवार की छह प्रजातियों (*अजरेटम कोनिजाइडस, कैनाबिस सटाइवस, क्लियोम विसकोसा, धतूरा स्ट्रेमोनियम, फाईलेन्थस निरुरी, ओसिमम केनम* और *टेफ्रोसिया परपुरिया*) में *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया से संबंधित उपभेदों (16 SrII-C एवं 16SrII-D) की पहचान की पुष्टि की गई, जो बांस के पौधे के आसपास के क्षेत्रों में उगते हैं। एक पर्णफुदक प्रजाति *मुकेरिया स्पलेंडिडा* (चित्र 8.5) जो त्रिपुरा, दिल्ली एवं पंतनगर से बांसों के विचेज ब्रूम झुण्ड से एकत्रित किए गए थे उनकी भी पीसीआर विधि द्वारा फाइटोप्लाज्मा विशिष्ट अनुक्रम का उपयोग कर फाइटोप्लाज्मा समूह *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा आस्ट्रेलेशिया से संबंधित उपभेद (16SrII-D) के रुप में पहचान की गई। यह नई पर्णफुदक प्रजाति *एम. स्पलेंडिडा* बांस फाइटोप्लाज्मा वाहक के रुप में पहचानी गई जो फाइटोप्लाज्मा 16SrII-D उपसमूह के प्राकृतिक प्रसार में सक्षम भूमिका की संभावना दर्शाती है।

प्रबंधनः रोगी बांस के तनों एवं जड़ों को प्रवर्धन के लिये उपयोग में नहीं लाना चाहिए। ऐसे क्षेत्र जहाँ बांस में फाइटोप्लाज्मा जनित रोग लक्षण दिखाई देते हैं, वहां कीटनाशक दवाओं का प्रयोग कर फाइटोप्लाज्मा को एक झुरमुट से दूसरे झुरमुट में फैलने से रोका जा सकता है। साथ ही कायिक संवर्धन हेतु टिशू कल्चर विधि का प्रयोग करने से फाइटोप्लाज्मा के निवारण में सहायता मिलती है।

चित्र 8.5: बांस फाइटोप्लाज्मा प्रभेद को प्रकृति में फैलाने वाली पर्णफुदक प्रजाति, *मुकेरिया स्पलेंडिडा*

9. ताड़ वृक्षों से संबंधित फाइटोप्लाज्मा जनित रोग

नारियल का जड़ मुर्झान रोग

नारियल के महत्वपूर्ण रोगों में जड़ मुर्झान (रुट विल्ट) एक प्रमुख रोग है। यह रोग फाइटोप्लाज्मा जनित रोग है, जो *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ओराइजी नामक फाइटोप्लाज्मा द्वारा होता है। इस रोग का शुरुआती लक्षण पत्रक की असामान्य संरचना है। रोग बढ़ने पर नारियल की पैदावार में भारी कमी देखी गई। यह रोग सभी आयु वर्ग के पौधों को प्रभावित करता है। वर्ष 1882 की भयानक बाढ़ के बाद केरल में नारियल जड़ (विल्ट) रोग पहली बार संज्ञान में आया। तब से यह तमिल नाडु, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश और दक्षिण केरल प्रदेश में नारियल की फसल को बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है। बीमारी से उत्पादन में 20–80 प्रतिशत तक कमी आ जाती है और नारियल के बाजार मूल्य में काफी कमी आ जाती है।

लक्षणः इस रोग के प्रमुख लक्षण विशेष रुप से पत्तियों के मध्य और बाहरी भंवरो का स्पष्ट रुप से झुकना, पत्तों का झड़ना तथा पत्तों का पीला होना और उनका परिगलन है (चित्र 9.1क)। मादा फूलों के उत्पादन की क्षमता में कमी और विकृत जड़ प्रणाली इस रोग के महत्वपूर्ण लक्षण है। रोगग्रस्त पत्तों की कणिशिका के ताड़ का पीलापन व परिगलन का सूखना इस रोग के लक्षण हैं (चित्र 9.1

चित्र 9.1: नारियल का जड़ मुर्झान रोगः (क) रोगी वृक्ष का पीली पत्ती रोग (ख) पत्ती सड़न का लक्षण (ग) पुष्पक्रम का सूखना (घ) अपरिपक्व नट

ख एवं ग)। प्रति वृक्ष नारियल की संख्या में भारी कमी होती है एवं उनके आकार अत्यन्त छोटे एवं व्यापार लायक नहीं रह जाते हैं (चित्र 9.1घ)। नारियल के वृक्षों में फाइटोप्लाज्मा जनित रोग के लक्षणों की प्रांरभिक अवस्था में पहचान करना उनके नियंत्रण में महत्वपूर्ण है। रोगरोधी प्रजातियों का विकास एवं फाइटोप्लाज्मा रोग के अन्य प्राकृतिक स्रोत एवं रोग को फैलने वाले कीटों की पहचान एवं उनका नियंत्रण भी इस रोग के प्रबन्धन में अति महत्वपूर्ण संभावना है, जिस पर अध्ययन जारी है।

केंद्रीय और बाहरी भंवरो के पत्तों की परतदारजता एवं पत्ती के बाहरी भंवरो के पीलापन स्पष्ट लक्षण है। बाद में उत्पादित पत्तिया छोटी और पतली हो जाती हैं। जड़ों के पुनर्जनन में कमी से जड़ आवरण भूरे रंग का हो जाता है और जड़ें सूख जाती हैं। अनियंत्रित पुष्पक्रम में कणिशिका के गोले और परिगलन का सूखना, पुष्पाक्रम परिगलन, बहुत कम मात्रा में मादा फूल, पराग का बॉझपन और अपरिपक्व नट, नट के आकार, संख्या में कमी, खराब गुणवत्ता वाले खोपरा, पतली भूसी, कम फर्म खोल, कमजोर रेशे, कर्नेल की असमान मोटाई का उत्पादन एवं पतली कर्नेल खोपरा में बहुत कम तेल की मात्रा आदि रोग के प्रमुख लक्षण है।

प्रसारः यह रोग विंग बग, *स्टेफनीस टाइपिकस* द्वारा फैलाये जाने की सूचना है। इस रोग द्वारा सभी उम्र के वृक्ष प्रभावित होते हैं। अभी हाल ही में इस रोग की भ्रूण द्वारा भी प्रचारित होने में दक्षता की जानकारी प्राप्त हुई है, जो एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है और रोग के प्रभावी रुप से प्रसारित होने में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

रोगजनकः यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ओराइजी प्रभेद द्वारा होता है।

सुपारी का पीली पत्ती रोग

सुपारी भारतवर्ष की एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है, जो दक्षिण एवं उत्तर–पूर्व भारत में बहुतायत से खेती के रुप में उगाई जाती है और किसानों के लिए आमदनी का एक अच्छा स्रोत है। सुपारी के वृक्षों में सुपारी का पीला पत्ती रोग एक फाइटोप्लाज्मा जनित रोग है, जो *कैन्डीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ओराइजी द्वारा होता है। सबसे पहले वर्ष 1914 में रोग को केरल प्रदेश में रिपोर्ट किया, जो अब कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, असम एवं त्रिपुरा प्रदेशों में बहुतायत से मिलता है और सुपारी उत्पादन को अत्यधिक प्रभावित करता है।

लक्षणः इस रोग का मुख्य लक्षण पत्तियों का पीलापन है जो बाद में सूखी पत्ती में बदल जाता है। सुपारी नट्स की संख्या एवं आकार में कमी, अनियन्त्रित पुष्पक्रम एवं उत्पादन काफी कम हो जाता है। रोग की अधिकता की अवस्था में रोगी पौधे सूख कर मर जाते हैं। सुपारी परिपक्व होने के पूर्व ही पेड़ों से गिरकर नष्ट हो जाती है (चित्र 9.2)।

चित्र 9.2: सुपारी वृक्ष का पीली पत्ती रोग

प्रसार: सुपारी के पीली पत्ती रोग के प्राकृतिक प्रसार का स्रोत ज्ञात नहीं है।

रोकथाम: रोग की प्रांरभिक अवस्था में पहचान कर इस रोग के प्रसार को रोका जा सकता है। अभी तक सुपारी की कोई भी प्रजाति इस रोग के प्रति रोगरोधी नहीं पाई गई है। भविष्य में रोगरोधी प्रजातियों का विकास इस रोग के नियंत्रण/प्रबन्धन में आवश्यक कदम होगा। साथ ही रोग के प्राकृतिक स्रोत की पहचान कर इस रोग की रोकथाम सम्भव हो सकेगी, जिस पर अध्ययन जारी है।

ताड़–तेल का अंकुर विगलन (स्पियर रॉट) रोग

ताड़ के तेल को पश्चिमी अफ्रीका के देशों में काफी पहले से पहचाना गया है और खाना पकाने के तेल के रूप में इसका व्यापक प्रयोग प्रचलन में है। इसकी खेती में कम लागत और तलने में उपयोग के समय परिष्कृत उत्पाद की उच्च जारणकारी स्थिरता विश्व के कई देशों में व्यावसायिक भोजन उद्योग में इसके बढ़ते उपयोग को प्रोत्साहित कर रही है।

अन्य तिलहनी फसलों की तुलना में प्रति हैक्टर के हिसाब से ताड़ के तेल का उत्पादन प्रति हैक्टर 10 से 46 गुना अधिक होता है। इसके अलावा एक हैक्टर की फसल से लगभग 4 टन तेल निकलता है। ताड़ तेल के पौधे 6 से 7 वर्ष में तैयार हो जाते हैं। दक्षिणी भारत तेल–ताड़ के उत्पादन में देश में अग्रणी है। तेल–ताड़ में फाइटोप्लाज्मा द्वारा अंकुर विगलन नामक एक प्रमुख बीमारी होती है, जिससे पूरा ताड़ सूख कर नष्ट हो जाता है।

लक्षण: इस रोग में रोगी ताड़ वृक्षों की पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगती हैं। पुष्पक्रम विकसित नहीं हो पाता एवं बीज का उत्पादन काफी कम हो जाता है, जो तेल का मुख्य स्रोत है। रोग के गंभीर अवस्था में रोगी पौधा सूख कर मर जाता है (चित्र 9.3), पौधे की बढ़वार रुक जाती है और तेल का उत्पादन काफी कम हो जाता है।

चित्र 9.3: तेल–ताड़ में विभिन्न अवस्थाओं पर पत्ती के पीले एवं सूखा रोग के लक्षण

रोगजनक: यह रोग *कैंडीडेटस* फाइटोप्लाज्मा ओराइज़ी द्वारा होता है जो 16 Sr XI-B उप प्रभेद का सदस्य है। भारत में कर्नाटक, तमिल नाडु एवं आंध्र प्रदेश में इस फाइटोप्लाज्मा की पहचान की पुष्टि की गई है।

रोकथाम: ताड़ तेल के प्रारंभिक अवस्था में रोग के लक्षण को पहचान कर रोग के प्राकृतिक आपतन व बढ़वार को रोका जा सकता है। रोगरोधी जातियों का विकास भी इस रोग की रोकथाम में अति उपयोगी होगा। साथ ही प्रकृति में इस रोग के प्राकृतिक स्रोत की पहचान से इस रोग के रोकथाम में मदद मिलेगी।

10. फाइटोप्लाज्मा रोगों का समेकित प्रबन्धन

- वैसे तो फाइटोप्लाज्मा रोगों के प्रति किसी भी फसल की रोग–रोधी प्रजातियां उपलब्ध नहीं है, फिर भी अनुभव के आधार पर मध्यम रोग–रोधी प्रजातियों का भी चुनाव करने से फाइटोप्लाज्मा रोग के नियंत्रण में सहायता मिलती है।
- फूलों की फसलों में फाइटोप्लाज्मा के लक्षण दिखाई देने पर टेट्रासाइक्लिन रसायन (80 व 100 पी.पी.एम) का छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करने से फाइटोप्लाज्मा रोग का आपतन कम हो जाता है और फूल की अच्छी फसल प्राप्त की जा सकती है।
- फूल की फसलों जैसे गुलदाउदी, गुलाब, चमेली व गेंदा की फसलों में कली छड़ों को 80 से 100 पी.पी.एम टेट्रासाइक्लिन में 15–20 मिनट डुबाने के उपरान्त बोने पर फाइटोप्लाज्मा रोग के पनपने की संभावना कम हो जाती है।
- बहुवार्षिक फसलों में रोगी टहनियों को जिनमें फाइटोप्लाज्मा रोग के स्पष्ट लक्षण दिखाई देते है, उन्हें काट देने से पेड़ की अन्य टहनियों पर ज्यादा मात्रा में अच्छे फल प्राप्त किये जा सकते है।
- समय–समय पर फसल की निगरानी करके खेत के आस–पास पाये जाने वाले परपोषी पौधों को निकालकर, रोग के फैलाव को रोका जा सकता है।
- सब्जी व फूलों की नर्सरी व क्यारी को तैयार करने हेतु, कीटरोधक नायलान नेट (60–100 मेश) का उपयोग करना चाहिए।
- गन्ना, बांस, फल, नारियल, सुपारी एवं तेलताड़ की खेती हेतु स्वस्थ पौधशाला व नर्सरी से ही रोग रहित पौधे लाकर उनका रोपण करने से फाइटोप्लाज्मा रोगों का प्रबंधन संभव है।
- फलों में संक्रमण वाले पौधे से कली का चुनाव कलम बांधने के लिए न करें। नर्सरी पौधे को ऐसी जगह तैयार करें जहां पर यह रोग न हो।
- चूंकि फाइटोप्लाज्मा विभिन्न प्रकार के पर्ण फुदक (लीफ हॉपर), पादप फुदक (प्लांट हॉपर) एवं सिलिड्स कीटों द्वारा प्रकृति में प्रसारित होता है। अतः विभिन्न फसलों में इन कीटों की पहचान फाइटोप्लाज्मा रोगों के प्रसार के नियंत्रण में अति आवश्यक है। भारत में पर्ण फुदक, पादप फुदक एवं सिलिड द्वारा प्रसारित होने वाले फाइटोप्लाज्मा की सूची सारणी–1 में दी गई है और प्रमुख कीटों के चित्र भी दिये गये हैं (चित्र 10.1), जिन्हें किसान पहचान कर समय से उचित कीटनाशक रसायनों का उपयोग कर फाइटोप्लाज्मा रोगों द्वारा होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं।

- फाइटोप्लाज्मा वाहक कीट को आकर्षित करने एवं उन्हें फंसाने के लिए खेत के अंदर व बाहर पीले व नीले रंग के चिपचिपे बोर्ड स्थापित करना लाभप्रद है।
- पलवार (मल्चिंग) एवं पॉलीथीन विधि द्वारा कीटों के आपतन व प्रजनन को कम कर फाइटोप्लाज्मा रोगों के आपतन को कम किया जा सकता है।
- बुआई के तिथियों को विभिन्न पर्णफुदक प्रजातियों के आपतन के हिसाब से आगे व पीछे बोकर कीटों के प्रकोप व उनके द्वारा फाइटोप्लाज्मा के होने वाले पारेषण के आपतन को रोका जा सकता है।
- फसल में फाइटोप्लाज्मा जनित लक्षण प्रकट होते ही इमिडाक्लोप्रिड (3 मि.लि./10 लिटर पानी) तथा थाइमेक्सान (2 मि.लि./10 लिटर पानी) का 15 दिन के अन्तराल पर उपयोग करने से कीटों का आपतन कम हो जाता है और फाइटोप्लाज्मा रोगों की की रोकथाम में मदद मिलती है।
- पर्णफुदकों एवं पादप फुदकों के नियन्त्रण हेतु निम्न कीटनाशी रसायन भी अत्यंत लाभकारी हैः डाइनोटेफ्यूरान 20% SG (0.4 ग्राम/लीटर); फेनोब्यूकार्ब (वी पी एस सी) 50% EC (2 मिली/लीटर); फ्लोनीकामिड 50% WG (0.3 ग्रम/लीटर); लैमडा साईहैलोथ्रिन 5% EC (0.5 मिली/लीटर) एवं ट्राईफ्लूमेजोपाईरिम 10% SC (0.5 मिली/लीटर)
- संक्रमित पौधों को शुरुआती अवस्था में उखाड़ कर फेंकने व जमीन में गड्ढा बनाकर दबाने से रोग के संक्रमण को रोकने में मदद मिलती है। फसल की अंतिम कटाई/तुड़ाई के बाद शीघ्रातिशीघ्र पुरानी फसल के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
- पौधों की छंटाई, कटाई और उन पर छिड़काव करते समय और एक खेत से दूसरे खेत में ले जाते हुए उपकरणों और हाथ को धोकर साफ कर लेना चाहिए।
- गन्ने की फसल में फाइटोप्लाज्मा रोगों से मुक्ति के लिए, संक्रमित गन्ने के पर्वो को 2 घंटे तक 54^0 से. पर गर्म हवा या 2 घंटे तक 50^0 से. तापमान पर गर्म जल के साथ उपचारित करने की संस्तुति की गई है।

सारणी 1 : भारत में पर्ण फुदक, पादप फुदक एवं सिलिड प्रजाति के कीटों द्वारा प्रसारित होने वाले फाइटोप्लाज्मा रोगों का विवरण एवं उनके प्रसारण की प्रवृत्ति

क्र.	फाइटोप्लाज्मा बीमारी एवं समूह	कीटों का नाम	प्रसारण की प्रवृत्ति
1.	तिल फिलोडी (16Sr IIA & II-C)	*ओरेसियस एल्वीसिंक्टस* *सर्कुलीफर हेमोटोसेप्स* *हिशिमोनस फाइसिटिस*	प्राकृतिक प्राकृतिक प्राकृतिक
2.	बैंगन की छोटी पत्ती (16Sr VI-D)	*ओरेसियस एल्विसिंक्टस*	प्राकृतिक
3.	गन्ना घासीय प्ररोह व विवर्ण रोग (16SrXI समूह)	*डेल्टासिफेलिस वल्गेरिस* *एक्सीटिएनस इंडिकस* *पायरिला पर्पुसिला* *मेइसटस पोर्टिको* *कोफाना अनएमेकुलाटा*	प्राकृतिक वैकल्पिक वैकल्पिक वैकल्पिक वैकल्पिक
4.	धान का नारंगी पत्ती रोग (16SrXI समूह)	*रेसिलिया डोर्सेलिस* *नेफोटेटिक्स वीरेसेंस*	प्राकृतिक प्राकृतिक
5.	सोयाबीन पीली व छोटी पत्ती (16SrI समूह)	*इम्पोएस्का मोट्टी* *सोगोटेला कोलोशोन*	वैकल्पिक वैकल्पिक
6.	गुलदाउदी फिलोडी (16Sr I & II समूह)	*हिशिमोनस फाइसिटिस*	वैकल्पिक
7.	चना फिलोडी (16Sr II समूह)	*ओरेसियस एल्बीसिंक्टस* *एमेरास्का बिग्यूटुल्ला* *हिशिमोनस फाइसिटिस*	वैकल्पिक वैकल्पिक वैकल्पिक
8.	तोरिया फिलोडी (16Sr VI समूह)	*लाओडेल्फेक्स स्टिरएटेलस* (पादप फुदक)	प्राकृतिक
9.	गेंदा का फिलोडी रोग (16Sr I समूह)	*एक्सिटियेनस इंडिकस* *कोफाना यूनीमैकुलेटा*	वैकल्पिक वैकल्पिक
10.	बांस का विचेज ब्रूम रोग (16Sr II समूह)	*एमरीटोडस एरकिनसोनी* *कुकेरिया स्प्लेंडिडा*	वैकल्पिक वैकल्पिक
11.	नींबू का हरितिमा रोग	*डायाफोरिना सिट्री* (सिलिड)	प्राकृतिक

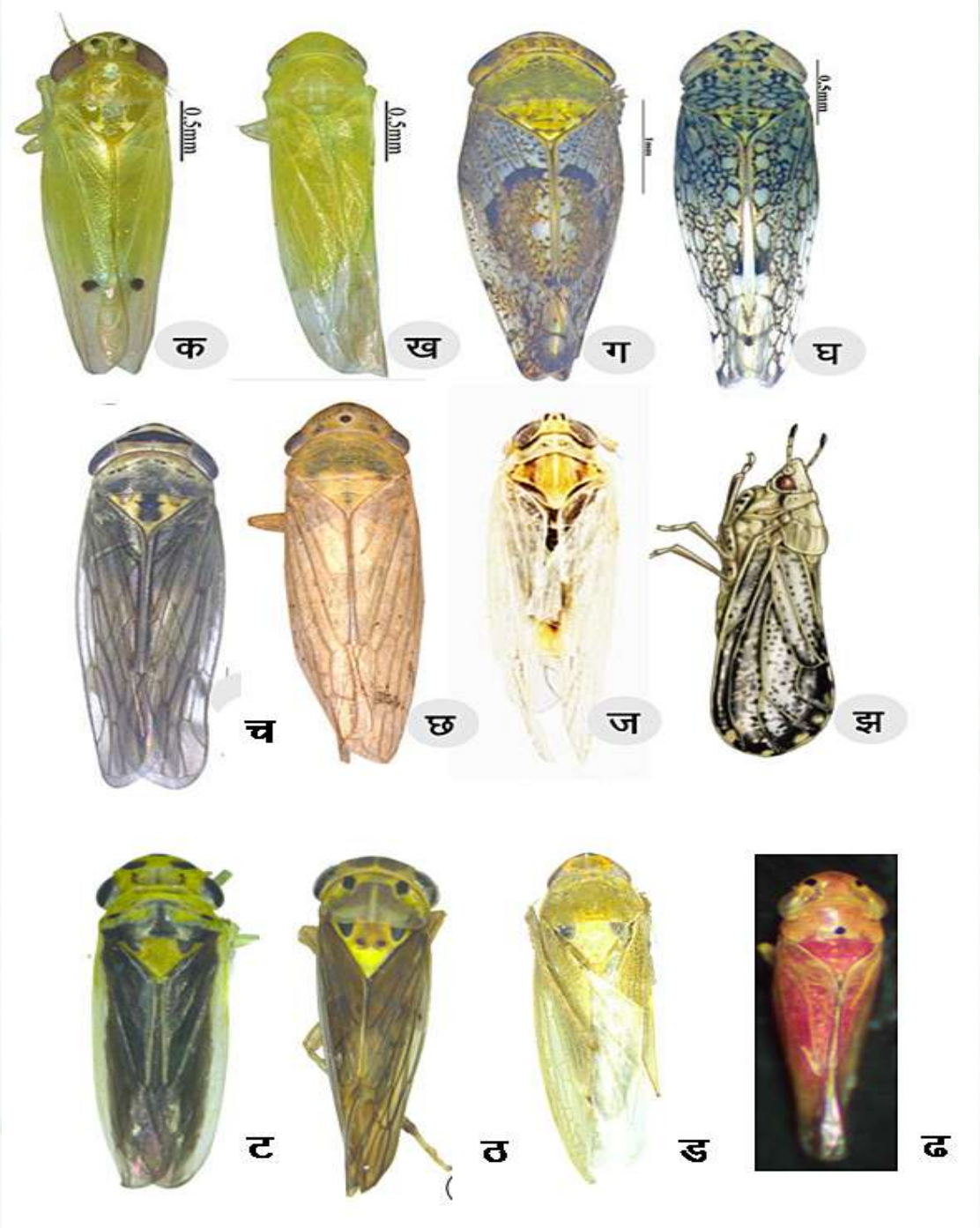

चित्र 10.1 (क) *एमरेस्का बाइगुरैला* (ख) *एमपोएस्का प्रजाति* (ग) *हिशीमोनास फाईसिटिस* (घ) *ओरोसियस एल्बिसिन्कटस* (च) *एक्सिटिएनस इंडिकस* (छ) *कोफाना यूनिमैकुलेरा* (ज) *सर्कुलीफर हेमोटोसेप्स* (झ) *डायाफोरिना सिट्री* (ट) *कोला पाउलूला* (ठ) *एमरिटोडस एटकिनसोनी* (ड) *कृष्णा स्ट्रिंजिकालिस* (ढ) *कोला सिलोनिका*

गुलदाउदी का फिलोडी रोग

I.A.R.I. LIBRARY